॥ श्रीहरिः ॥

157

सती सुकला

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

सती सुकला

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

लेखक— श्रीरामनाथ 'सुमन'

ॐ

निवेदन

भारतवर्ष सतियों और पतिव्रताओंकी पुण्यभूमि है। यहाँ महान् पतिव्रताएँ हो गयी हैं; उन्हींमेंसे सती सुकला एक हैं। पतिकी अनुपस्थितिमें इनकी बड़ी कड़ी-कड़ी परीक्षाएँ हुईं, परंतु ये अपने पातिव्रत्यके बलसे सभीमें सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हो गयीं।

इस इतिहाससे एक शिक्षा यह मिलती है कि पुरुष यदि पतिव्रता पत्नीका परित्याग करके किसी धर्म-कार्यमें प्रवृत्त होता है तो उसे सफलता नहीं मिलती। देवता नाराज होते हैं, पितरोंकी दुर्गति होती है। अतएव पत्नीको साथ लेकर ही तीर्थयात्रादि धर्म-कार्य करने चाहिये।

इस छोटी-सी पुस्तिकासे हमारे भाई-बहिन लाभ उठावें, यही निवेदन है।

विनीत—

प्रकाशक

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-कृकलकी तीर्थयात्रा और सुकलासे सखियोंकी बातचीत ५
२-शूकरोंसे महाराज इक्ष्वाकुका युद्ध १०
३-शूकरके पूर्वजन्मकी कथा १६
४-शूकरीके पूर्वजन्मकी कथा १९
५-कंसमाता पद्मावतीकी कथा २२
६-पातिव्रत्यके त्यागका कुपरिणाम ३०
७-इन्द्रके द्वारा सुकलाके पातिव्रत्यकी परीक्षाका आयोजन ३३
८-इन्द्र और कामदेवपर सुकलाकी विजय ३८
९-कृकलका घर लौटना और सुकलाके पातिव्रत्यकी महिमा ४६

॥ श्रीहरि:॥

सती सुकला

कृकलकी तीर्थयात्रा और सुकलासे सखियोंकी बातचीत

आज जब हमारा जीवन अन्धकारसे भर गया है और जब हमारी सभ्यता और संस्कृति एक बहुत ही संकटापन्नावस्थासे गुजर रही है; जब घर-घरमें कलह, प्रमाद और अशान्ति है; जब प्रत्येक वर्ण अपने धर्मसे, अपने कर्तव्य और जिम्मेदारीसे दूर हट गया है, तब निराशाके इस अँधेरेमें डूब-से रहे दिलके सामने प्राचीन कालकी एक ज्योति-परम्परा रह-रहकर मानो चमक उठती है। मेरा तात्पर्य यहाँ उन सतियोंसे है, जिन्होंने अपने त्यागसे नारीत्वको सभ्यताके उच्च आसनपर बैठाया है—वे सतियाँ जो हजारों वर्षोंके बाद भी मानो एक जीवित, अक्षय प्रकाश-पुञ्जकी तरह हमारे आत्मविस्मृत, मूर्च्छित जीवनके चारों ओर घूम रही हैं। आजके इस युगमें जब श्रद्धाका स्थान कुतर्कने छीन लिया है, जब अन्त:सद्गुणोंका पवित्र स्थान बाहरी टीमटाम और शेखियोंने ले लिया है, जब अपनी वञ्चनाओंमें व्यक्ति और समाज भूले हुए हैं, तब हमें यह विचार करना है कि किसको लेकर हमारी प्राणधारा बनी है, क्या उन नारियोंको लेकर नहीं, जिन्होंने अपने अक्षय दानसे अन्नपूर्णा और लक्ष्मीकी भाँति मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठ परम्पराको जीवित रखा, जिन्होंने अपनी तपस्या और कष्ट-सहनके

द्वारा मानवताको मातृत्वके अमृतसे सींचा और जिन्होंने मनुष्यके पशुत्वका परिस्कार करके उसमें देवत्वकी स्थापना की?

मैं मानता हूँ कि आज जब नारीके गौरवपर प्रश्न-चिह्न लगानेका समय आया है, तब आजकी आधुनिक सभ्यताके शत-शत प्रलोभनोंके बीच चलनेवाली माताएँ, बहिनें, बेटियाँ उन प्राचीन सतियोंके जीवनसे न केवल रास्ता पा सकती हैं, बल्कि जीवनके अन्धकारमय कण्टकपूर्ण मार्गपर चलनेके लिये प्रकाश और बल भी प्राप्त कर सकती हैं।

और तब यह अच्छा होगा कि आज मैं अपनी बहिनोंको पुराने जमानेकी एक पवित्र कथा सुना दूँ। मुझे विश्वास है इससे उनका कल्याण होगा।

बहुत दिन हुए, पुण्यधाम काशीमें एक वैश्य रहते थे। उनका नाम कृकल था। वे धर्मज्ञ, ज्ञानी, गुणवान्, शास्त्र तथा धर्मग्रन्थोंमें श्रद्धा रखनेवाले थे। उन्हींकी भाँति उनकी पत्नी सुकला भी सर्वसद्गुणसम्पन्ना थी। वह साध्वी पतिभक्ता, सत्यवादिनी, धर्माचारपरायणा थी। एक बारकी बात है कि गुरुजनोंके मुँहसे तीर्थयात्राका माहात्म्य और उससे मिलनेवाले पुण्यफलोंकी कथा सुनकर कृकलने तीर्थयात्राका निश्चय किया। जब वे चलने लगे तो पतिव्रता सुकलाने कहा—'स्वामी! मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ। जिस मार्गसे आप जायँ, उसीका अनुगमन मुझे करना चाहिये। आपकी पूजा ही मेरा धर्म है। इसलिये मैं भी आपके साथ चलूँगी—आपकी सेवा करते हुए आपकी छायामें रहकर धर्माचरण करूँगी। पातिव्रत्य ही स्त्रीका धर्म है, इसीसे उसकी सद्गति होती है। स्त्रीके लिये पति ही सुख है, पति ही स्वर्ग है, पति ही मोक्ष है। उसके लिये पति सर्वतीर्थमय और पति ही सर्वधर्ममय है। यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले पुरुषको यज्ञानुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजासे तत्काल प्राप्त कर लेती हैं।*'प्रियतम! मैं आपका आश्रय छोड़कर यहाँ न रहूँगी; आपके साथ चलूँगी।'

---

* सर्वतीर्थसमो भर्त्ता सर्वधर्ममयः पतिः।
मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥
(पद्म० भूमि० ४१। १४-१५)

कृकल जानते थे कि तीर्थयात्रा कितनी कठिन होती है, इसलिये पत्नीके रूप, रंग, वयस्, कोमलताका विचार बार-बार उनके मनमें आने लगा। वे सोचने लगे कि 'सर्दी, धूप, आँधी, पानी, कठिन कँकरीले और कँटीले मार्गके कारण इसका बुरा हाल हो जायगा। सोने-सा चमकनेवाला इसका मुख फीका हो जायगा—रूप नष्ट हो जायगा, पाँवोंमें छाले पड़ जायँगे, भूख-प्याससे यह निर्जीव-सी हो जायगी। इसीसे मेरा जीवन और मेरा धर्म है, इसका नाश होनेसे मेरा सर्वनाश हो जायगा। यही मेरी जीविका है; यही मेरी प्राणेश्वरी है। इस स्थितिमें मैं कैसे इसे तीर्थयात्रामें साथ ले जा सकता हूँ। नहीं, मुझे अकेले ही जाना चाहिये—इसे नहीं ले जाना चाहिये।'

पतिको विचारमग्न देख सुकला समझ गयी कि इनके मनमें क्या भावनाएँ आ रही हैं और क्यों इन्हें हिचकिचाहट हो रही है। तब उसने हाथ जोड़कर पतिसे कहा—'प्राणप्रिय! निर्दोष नारीका त्याग करना पतिका कर्तव्य नहीं है। पत्नी ही पुरुषका धर्ममूल है! इसलिये आप मुझे अवश्य साथ ले चलिये।'

परंतु कृकलने उसकी बात न मानी। ऊपरसे तो वे उसे आश्वासन देते और कहते रहे कि मैं तुमको ले चलूँगा, पर मनमें उन्होंने निश्चय कर लिया था कि 'इसके भलेके लिये ही इसको साथ ले चलना ठीक न होगा।'

जब सुकला पतिकी बातोंसे संतुष्ट होकर घरके दूसरे कामोंमें लग गयी, तब उपयुक्त समय पाकर कृकल अपने साथियोंके साथ चुपकेसे रवाना हो गये। जब देवार्चनका समय हुआ और सुकलाने खोजनेपर भी घरमें कहीं पतिको न देखा, तब वह व्याकुल होकर रोने लगी। उसने इधर-उधर लोगोंसे पता लगाया तो मालूम हुआ कि पतिदेव तीर्थयात्राको चले गये हैं। पतिके इस प्रकार चले जाने और अपनेको साथ न ले जानेसे उसे बड़ा दुःख हुआ। बहुत देरतक वह अपने कमरेमें बैठकर रोती रही। अन्तमें जब मनका बोझ हलका हुआ, तब उसने निश्चय किया कि 'जबतक मेरे पति लौटकर घर नहीं आयेंगे, तबतक मैं पृथ्वीपर सोऊँगी; घी, तैल, दही और दूध नहीं खाऊँगी; नमक, पान, गुड़ इत्यादि समस्त स्वाद उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंका त्याग करूँगी तथा कभी एक समय खाकर, कभी पूरी तरह निराहार रहकर ही समय बिताऊँगी।'

उसने अपने निश्चयके अनुसार शृङ्गारकी भावनातकका त्याग कर दिया। वह कभी खाती, कभी न खाती। जमीनपर पड़ी रहती और सदैव पतिके ध्यानमें मग्न रहती। उसने सुन्दर वस्त्र त्याग दिये और बहुत साधारण, आकर्षणहीन वस्त्र धारण कर लिये। धीरे-धीरे पति-वियोगके दुःखसे और एकाहार, अनाहार तथा जीवनकी अनेक सुविधा छोड़ देनेसे उसका शरीर पीला पड़ गया। वह बिलकुल दुबली हो गयी। कभी रोती, कभी हाहाकार करती। रोते रहनेसे उसे अनिद्रा रोग हो गया। खाने-पीनेकी उसे रुचि ही न होती थी।

उसकी यह हालत देखकर उसकी सहेलियाँ बड़ी चिन्तित हुईं। वे उसके पास आयीं और प्रेमसे पूछने लगीं कि 'तुमने अपना यह क्या हाल कर रखा है? क्यों तुम इतनी दुःखी हो?' सुकलाने कहा—'धर्मात्मा पति मुझे छोड़कर तीर्थयात्रा करने चले गये हैं। मैं पापरहित हूँ, निर्दोष हूँ। स्वामीने मुझे छोड़ दिया है। सखियो! मैं इसी दुःखसे सदा दुःखित रहती हूँ। पतिद्वारा छोड़े जानेसे तो प्राण-त्याग करना भी अच्छा है। मुझसे अब यह दारुण वियोग सहा नहीं जाता।'

सखियाँ उसे तरह-तरहसे समझाने लगीं। उन्होंने कहा—'सखी! तुम व्यर्थ दुःख कर रही हो। तीर्थयात्रा करके तुम्हारे पति घर लौट आयेंगे। क्यों तुम अपना शरीर इस प्रकार सुखा रही हो? देखो, तुम्हारा सोने-सा शरीर मिट्टी हो रहा है। तुमने अपना क्या हाल कर रखा है। उठो, खाओ, पिओ और अपने लिये उचित समस्त भोगोंको अपनाओ। प्यारी सखी! इन बातोंमें क्या रखा है? कौन किसका पति है, कौन किसका पुत्र है, कौन किसका भाई है? इस संसारमें किसके साथ किसका क्या सम्बन्ध है? खाना-पीना, मौज उड़ाना, जो कुछ मिला है उसका उपभोग करना, यही सब तो संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर फिर फलका उपभोग कौन करता है? कौन फिर उसे देखने आता है?'

सुकला बोली—'सखियो! तुमने जो कुछ कहा है वह मेरी अवस्थासे दुःखित होकर मेरी भलाईके विचारसे ही कहा है। इस प्रेम और सहानुभूतिके लिये मैं तुम्हारा आभार मानती हूँ, पर तुमने जो कुछ कहा है, वह वेदसम्मत नहीं है। धर्म और शास्त्र उसका अनुमोदन नहीं करते। जो नारी पतिसे दूर रहकर अकेली रहती है, उसे पापिनी समझा और कहा जाता है। शास्त्रका नियम यही है कि स्त्रीको सदा पतिके साथ रहना

चाहिये। शास्त्रोंमें पतिको ही नारीके लिये 'तीर्थ' कहा गया है। इसलिये शरीरसे, मनसे, वचनसे उसे सदा पतिका ही आवाहन करना चाहिये और पतिका ही पूजन करना चाहिये। पतिका आश्रय लेकर, उसके साथ बायीं तरफ बैठकर स्त्रीको गार्हस्थ्यधर्मका आचरण करना चाहिये और दान तथा पूजा इत्यादि करनी चाहिये। इस प्रकार किये हुए दान-पुण्यकी बड़ी महिमा है। यहाँतक कहा गया है कि वैसा फल काशी, गङ्गा, पुष्कर, द्वारका, अवन्ती, केदार अथवा चन्द्रशेखर—कहींपर भी पूजा करनेवाली स्त्रीको नहीं मिल सकता। सखियो! पतिके प्रसादसे सुख, पुत्र, सौभाग्य, भूषण, वस्त्र, तेज, यश, गुण—सब कुछ प्राप्त होता है। पतिके रहते जो स्त्री दूसरे धर्मका आचरण करती है, उसका वह धर्म निष्फल हो जाता है। जो स्त्री इस संसारमें पतिहीना होती है उसे सुख, रूप, यश, पुत्र कहाँ मिलता है? वह संसारमें सदा दुर्भाग्य और दुःख भोगती है। पतिके प्रसन्न रहनेसे समस्त देवता स्त्रीसे प्रसन्न रहते हैं। देव, ऋषि, मनुष्य—सभी पतिके संतुष्ट रहनेसे संतुष्ट रहते हैं। इसलिये पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवता और पति ही स्त्रीका तीर्थ एवं पुण्य है।* पतिके रहनेपर ही नारी शृङ्गार और भूषणसे सुशोभित होती है। पतिके बिना ये चीजें साँपके मुँहके अंदरके दूधके समान हैं। नारी पतिके लिये ही महाभागी, सुव्रता और चारुमङ्गला है। पतिके मर जानेपर यदि नारी शृङ्गार करती है तो उसका रूप, वर्ण सब कुछ शवरूप होता है। लोग उसे पुंश्चली कहते हैं। मैंने सदा इसी विचार और प्रणालीका अनुसरण किया। तब मुझे पतिने क्यों छोड़ा? सखियो! इस समय मुझे सुदेवाकी एक पुरानी कथा याद आ रही है।'

---

*भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता देवतैः सह।
भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन॥
(पद्म० भूमि० ४१। ७५)

शूकरोंसे महाराज इक्ष्वाकुका युद्ध

सखियोंके मनमें यह जाननेकी इच्छा उत्पन्न हुई कि यह सुदेवा कौन थी। उनके आग्रहपर सुकलाने कहना आरम्भ किया—'उन दिनों सब धर्मोंको जाननेवाले मनुके पुत्र महाराज इक्ष्वाकु बड़े ही ज्ञानवान् तथा धर्मात्मा पुरुष थे। उनकी तरह उनकी पत्नी सुदेवा भी परम पतिव्रता और पुण्यचरिता थी। यह सुदेवा काशीके राजा वेदराजकी पुत्री थी। गुणके साथ रूपका उसमें अद्भुत संयोग था। महाराज इक्ष्वाकु पत्नीको बहुत अधिक प्रेम करते थे। वह सदा उसे अपने साथ रखते थे और रानी सुदेवा भी छायाकी भाँति उनके साथ रहती थी। एक बार सुदेवाके साथ इक्ष्वाकु जंगलमें शिकारके लिये गये। बड़ी देरतक वे शिकार करते रहे। फिर एक स्थानपर बैठकर विश्राम करने लगे। इसी समय उनको एक शूकर दिखायी पड़ा। वह पुत्र-पौत्रोंसे घिरा हुआ था और उसकी पत्नी शूकरी भी उसके बगलमें थी। वह बूढ़ा शूकर महाराज इक्ष्वाकुको देखकर पत्नी इत्यादिके साथ पहाड़के एक सुरक्षित हिस्सेमें बैठ गया और पुत्र-पौत्रोंका विचार करके पत्नीसे बोला—'प्रिये! मनुपुत्र महाबली महाराज इक्ष्वाकु शिकार करते हुए यहाँ घूम रहे हैं। वे मुझे देखकर इस ओर भी आयेंगे और मुझपर आघात करेंगे।' पतिको कातर होते देख शूकरी बोली—'प्रिय! जब कभी तुम देखते थे कि मेरी ओर योद्धा, शिकारी, व्याध आ रहे हैं तभी तुम पुत्र-पौत्रोंके साथ बहुत दूर घने जंगलमें चले जाते थे। तब आज तुम प्राण देनेके लिये यहाँ क्यों आकर बैठे हो? क्या तुम्हें महाराजका भय नहीं है?' शूकरने उत्तर दिया—'प्रिये! सुनो, मैं बताता हूँ कि क्यों मैं व्याधोंसे डरा करता हूँ और क्यों महाराजके द्वारा प्राण-त्यागके भयसे भीत नहीं हूँ। व्याध यह सुनकर कि यहाँ बहुत-से शूकर हैं, आते हैं। वे पापी और दुष्ट हैं। वे इस दुर्गम स्थानमें आकर पापाचार करते हैं। उन पापियोंके हाथों अपनी मृत्यु न हो, इसी भयसे मैं भाग जाया करता हूँ; क्योंकि उनके हाथों मरनेपर मेरी सद्गति न होगी, पुनः पापका आश्रय लेना पड़ेगा। प्रिये! अपमृत्युके भयसे ही मैं पहले दूर भाग जाया करता था, परंतु आज महाराजके दर्शन

हुए हैं। ये परम धर्मात्मा राजा हैं। मैं अपने समस्त बल और पौरुषके साथ इनसे युद्ध करूँगा। यदि अपने तेजसे राजाको जीत सका तो संसारमें मेरा यश फैल जायगा और यदि इनके हाथों मारा गया तो विष्णुलोकमें जाऊँगा। दोनों प्रकारसे मेरे लिये उत्तम अवसर आया है। तब मैं क्यों भागूँ? पूर्व जन्मोंमें न जाने क्या-क्या पाप किये थे कि शूकरयोनिमें जन्म हुआ। आज मेरे समस्त पाप राजाकी बाण-वर्षासे धुल जायँगे। इसलिये प्रिये! मेरा स्नेह छोड़कर पुत्र, पौत्र , कुटुम्ब और सबके साथ तुम दूर किसी सुरक्षित गुफामें चली जाओ। वह देखो, साक्षात् विष्णुके समान राजा इधर आ रहे हैं; मैं इनके हाथों मरकर सद्गति प्राप्त करूँगा। आज मेरे भाग्यसे स्वर्गके द्वार मेरे लिये खुल गये हैं। इस अवसरपर चूकना बुद्धिमानी न होगी।'

सुकला बोली—सखियो! शूकरकी बातोंसे शूकरीको बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—'तुम यूथके स्वामी हो। तुम्हींसे इसकी शोभा है। तुम्हारे बल और तुम्हारे ही तेजसे तुम्हारे पुत्र-पौत्र तथा अन्य वराह गर्जन करते हैं। तुम्हारे तेजसे ही उनका तेज है; तुम्हारे बलसे ही उनका बल है। जब तुम उनका त्याग कर दोगे, तब वे दीन-हीन, ज्ञानशून्य हो जायँगे। जिस प्रकार सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित होनेपर तथा पिता, माता, भाई, सास, ससुर और दूसरे सब कुटुम्बियोंसे घिरी होनेपर भी पतिहीना नारी शोभा नहीं पाती; चन्द्रहीन रजनी, पुत्रहीन कुल और दीपकहीन गृह जिस तरह कभी शोभा नहीं पाता, उसी तरह तुम्हारे बिना यह यूथ शोभा नहीं पायेगा। आचारहीन मनुष्य, ज्ञानहीन यति और मन्त्रीहीन राजाकी जो दशा होती है, वही दशा इस यूथकी तुम्हारे बिना होगी। पुत्रगण वेदविहीन द्विजकी तरह दीन हो जायँगे। मृत्युको सुलभ जानकर तुम मेरे ऊपर कुटुम्बका भार सौंपकर चले जाओगे, यह तुम्हारी कैसी प्रतिज्ञा है? प्रिय! तुम्हारे बिना मैं प्राण धारण न कर सकूँगी। मैं तुम्हारे साथ ही स्वर्ग, मृत्युलोक या नरक जो मिले उसका भोग करूँगी। इसलिये चलो, शीघ्र यहाँसे भाग चलें।'

शूकरीने बहुत तरहसे पतिको समझाया पर शूकर अपने निश्चयसे न डिगा। उसने कहा—'प्रिये! कातर होकर धर्मसे गिर जाना उचित नहीं है।

तुम वीर-धर्मको न जाननेके कारण ही ऐसी बातें कर रही हो। मैं ऐसे धर्मात्मा राजाको युद्ध करनेके लिये आते देख भाग नहीं सकता! उनके हाथ मारा गया तो भी मेरा उद्धार हो जायगा।' शूकरने वीर-धर्मका विस्तारके साथ बखान किया और वह युद्धके लिये तैयार हो गया। तब शूकरीने कहा—'मैं भी तुम्हारे निकट रहकर तुम्हारा पराक्रम देखूँगी।'

इसके बाद शूकरीने पुत्र-पौत्रों तथा अन्य कुटुम्बियोंको बुलाकर उन्हें तरह-तरहसे समझाया और दूर सुरक्षित स्थानमें चले जानेको कहा, पर पुत्र वहाँसे जानेको तैयार न हुए। उन्होंने कहा—'जो पुत्र माता-पिताको इस तरह (विपत्तिमें) छोड़कर चला जाता है, वह घृणाके योग्य है। उसने व्यर्थ ही माताका दूध कलंकित किया। वह निश्चय ही कीड़ोंसे भरे हुए भयंकर दुर्गन्धयुक्त (पूयमय) नरकमें जाता है। माता! हम आप दोनोंको छोड़कर नहीं जायँगे।' फिर सबने मिलकर व्यूहकी रचना की और राजाके आनेका रास्ता देखने लगे।

इस प्रकार सैकड़ों शूकर युद्धके लिये तैयार हो गये। उधर राजाके साथ जो हाँका डालनेवाले थे, उन्होंने राजासे सब समाचार कहा। महाराज इक्ष्वाकुने आज्ञा दी कि उनको बाँध डालो और पकड़ लो। राजाकी आज्ञा पाकर वे लोग युद्धके सामानसे सजकर शिकारी कुत्तोंको साथ लिये हुए आगे बढ़े। राजा भी अपनी सेनाके साथ गङ्गा-तटपर पधारे। उस स्थानकी शोभा अवर्णनीय थी। वन सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित और तरह-तरहके मधुर फलवाले वृक्षोंसे भरा था। वनकी शोभा देखते हुए राजा अपनी प्यारी पत्नी सुदेवाके साथ उस ओर बढ़ने लगे, जिधर शूकरयूथ था। राजाकी आज्ञासे सुशिक्षित और शिकार खेलनेकी कलामें दक्ष व्याधोंने शूकरोंपर भयंकर आक्रमण किया। जिस तरह मेघोंके समूह पर्वतपर पानी बरसाते हैं, उसी तरह व्याधोंद्वारा छोड़े हुए बाण-भाले उस शूकरयूथके ऊपर गिरने लगे। क्रुद्ध होकर शूकर सामने निकल आये और भयानक वेगसे टूट-टूटकर शत्रुओंका नाश करने लगे। उनके पैने दाँतोंसे कट-कटकर व्याध समरभूमिपर गिरने लगे। तब राजाने हाथियों और घोड़ोंकी सेना उनके विनाशके लिये भेजी पर क्रुद्ध शूकर साक्षात् कालके समान हाथियों, घोड़ों

और सैनिकोंका विनाश करने लगे। शूकरराज क्षणमें यहाँ, क्षणमें वहाँ दिखायी पड़ता। कभी अदृश्य हो जाता। इस तरह सेनाको कुचलकर नष्ट-भ्रष्टकर वह गर्जने लगा। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। दाँत बिजलीकी तरह चमक उठते थे। उसके चारों तरफ व्याधों, शूकरों, हाथी-घोड़ोंकी लाशें बिखरी हुई थीं। उसकी पत्नी तथा चार-पाँच पुत्र बच गये थे। इस समय पत्नीने फिर उससे भाग चलनेको कहा। तब वह बोला—'प्रिये! मैं भागकर कहाँ जाऊँगा? अब युद्धभूमिसे मैं भाग नहीं सकता। अपनी वीरताकी परम्पराका स्मरण करो। दो सिंहोंके बीचमें शूकर जल पी सकता है, किंतु दो शूकरोंके बीचमें सिंह जल नहीं पी सकता। शूकर जातिका ऐसा बल होता है। यदि मैं भाग गया तो हमारी ख्याति नष्ट हो जायगी। योद्धा लोभसे या भयसे नहीं भागता। जो रणतीर्थ छोड़कर चला जाता है, वह निश्चय पापी है।' इसके बाद बहुत देरतक वह अपनी पत्नीको वीर-धर्मका माहात्म्य बताता रहा। अन्तमें बोला—'मैं युद्धसे भागनेकी कल्पना नहीं कर सकता। मैं आज महाराजसे युद्ध करूँगा, परिणाम चाहे जो हो। तुम बच्चोंको लेकर यहाँसे चली जाओ और सुखपूर्वक जीवन धारण करो।' शूकरी बोली—'प्रिय! मैं तुम्हारे बन्धनमें बँधी हूँ। मैं बच्चोंके साथ तुम्हारे सामने प्राणत्याग करूँगी।' यह कहकर वह भी लड़नेके लिये तैयार हो गयी। वर्षाकालमें जिस तरह आकाशमें बिजलीकी चमकके साथ बादल गरजते हैं, उसी तरह कान्तासहित शूकर उस समय गर्जन करने लगा और महाराज इक्ष्वाकुको पैरोंके अगले भागसे चुनौती देने लगा। महाराज उसको चुनौती देते देखकर उसकी ओर दौड़ पड़े। शूकरसे अपनी दुर्जय सेनाको हारते देखकर राजाको उसपर बड़ा क्रोध आया और घोड़ेपर सवार होकर बड़े वेगसे उन्होंने उसकी तरफ प्रस्थान किया। बाणवर्षा करते हुए राजाको आते देख शूकर भी उनकी ओर दौड़ा। शूकर बाणसे घायल होनेके कारण क्रोधसे दाँत कटकटा रहा था। एक बार वह गिर पड़ा, परंतु क्षणभरमें राजाके घोड़ेको घायल करता हुआ उन्हें लाँघ गया। शूकर स्वयं बाणोंसे बिंध गया था पर वहाँसे न हटा। उधर उसके तीखे दाँतोंसे आहत होकर घोड़ा पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब राजाने शूकरपर

गदाका भयंकर प्रहार किया। इस बार वह चोट न सह सका और पृथ्वीपर गिरकर उसने देहलीला समाप्त की। देवताओंने पुष्पवर्षा की। मरनेके बाद राजाके स्पर्श करते ही वह चतुर्भुज हो गया और दिव्य तथा तेजोमय रूपमें सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे युक्त होकर देवलोकको चला गया। वहाँ इन्द्रादि देवताओंने उसकी पूजा-अभ्यर्थना की।

सुकलाने कहा—शूकरराजकी यह सद्गति देखकर शूकरीने भी पतिका अनुसरण करनेका विचार किया। उसके साथ उसके चार पुत्र अब भी बचे थे। उसने सोचा—ये बच जायँ तो इनके द्वारा पतिके वंशकी रक्षा होती रहेगी। यह सोचकर उसने उनमेंसे सबसे बड़े लड़केको अपने तीनों भाइयोंके साथ वहाँसे चले जानेको कहा। बड़े लड़केने वीरतापूर्वक उत्तर दिया—'माँ! यदि मैं जीवनकी आशासे जननीको इस प्रकार छोड़कर भाग जाऊँ तो मुझे धिक्कार है। मैं पिताके शत्रुका संहार करूँगा।' अन्तमें बड़े आग्रहके बाद छोटे तीनों लड़के वहाँसे दूसरे जंगलमें चले गये और माता-पुत्र युद्धभूमिमें आकर हुंकार करने लगे। राजाकी आज्ञासे बहुत-से व्याध योद्धा उनसे लड़ने गये, परंतु उनके सामने ठहर न सके। पृथ्वीपर लाशें बिछ गयीं। अन्तमें महाराज स्वयं शूकर-पुत्रसे लड़नेके लिये आगे आये। घोर युद्ध हुआ। तब राजाने अर्द्धचन्द्राकार बाण चलाकर उसे मारा। वक्षस्‌में बाण लगते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। पुत्रशोकसे शूकरी उसकी लाशपर गिर पड़ी। फिर सँभलकर उठी और उसने ऐसा भयंकर युद्ध किया कि सैनिक और व्याधगण त्राहि-त्राहि करने लगे। यह दृश्य देखकर रानी सुदेवाने पतिसे पूछा—'महाराज! यह शूकरी क्रुद्ध होकर भयंकर वेगसे हमारी सेनाका नाश कर रही है। आप इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? क्यों नहीं इसे मारते?' महाराजने उत्तर दिया—'प्रिये! यह स्त्री है! मैं इसे नहीं मारूँगा। स्त्री-वधको महापाप कहा गया है। इसीसे मैं इसे नहीं मार रहा हूँ, न इसे मारनेके लिये किसीको प्रेरणा ही करता हूँ। हे सुन्दरी! इसके वधसे पाप होगा।' राजा यह बात कहकर चुप ही हुए थे कि उधर झार्झर नामक एक व्याध शूकरीको महायुद्ध करते देखकर क्रुद्ध हो उठा। उसने देखा—बड़े-बड़े वीर योद्धा भी उसके सामने टिक नहीं पाते हैं। यह देख उसने एक बड़ा ही पैना बाण उसे मारा। शूकरी घायल होकर उसपर झपट पड़ी और उसने झार्झरको पछाड़ डाला। परंतु गिरते-गिरते झार्झरने शूकरीको तलवारसे बुरी तरह आहत कर दिया! शूकरी पृथ्वीपर गिर पड़ी और बेहोश हो गयी।

रानी सुदेवाने जब पुत्रवत्सला शूकरीको पृथ्वीपर गिरकर बेहोश होते देखा, तब वह उसके पास गयी और उसके घावोंको धोया तथा उसके मुँहमें ठंडा पानी डाला। रानीका स्पर्श होने और मुँहमें जल पड़नेसे

शूकरीको होश आया और वह मनुष्योंकी भाषामें बोली—'देवि! तुमने मुझे अभिषिक्त किया, अतः तुम सदा सुखी रहो। आज तुम्हारे स्पर्शसे मेरे समस्त पाप नष्ट हो गये।' पशुके मुँहसे शुद्ध देववाणी सुनकर रानी चकित हो गयी और पतिसे बोली—'महाराज! ऐसी आश्चर्यजनक घटना तो मैंने कभी देखी न थी। पशुयोनिमें जन्म लेकर यह शूकरी भी मनुष्यकी तरह शुद्ध भाषामें बात करती है।' राजाको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। रानीने उस शूकरीसे पूछा—'तुम कौन हो? तुम पशु होकर भी मनुष्योंकी वाणीमें बोलती हो। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। अवश्य इसमें कुछ रहस्य है। यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो तुम अपनी और अपने वीर स्वर्गीय पतिके पूर्वजन्मकी कथा मुझे सुनाओ!'

शूकरके पूर्वजन्मकी कथा

रानीके आग्रहपर शूकरीने कहना आरम्भ किया—'मेरे पति पूर्वजन्ममें बड़े ज्ञानी और संगीतकुशल गन्धर्व थे। इनका नाम रंगविद्याधर था, ये सब शास्त्रोंके जाननेवाले थे।

'एक बारकी बात है कि मनोहर मेरुकी एक गुफामें पुलस्त्य मुनि एकाग्र मनसे तपस्या कर रहे थे। उसी समय मेरे पति विद्याधर घूमते हुए वहाँ पहुँच गये और बैठकर संगीतका अभ्यास करने लगे। उनके कण्ठसे निकली संगीतकी स्वरलहरीमें आसपासका प्रदेश डूबने लगा। मुनि भी इस ओर आकृष्ट हुए। उनका मन विचलित होने लगा। तब उन्होंने गायकसे कहा—'तुम्हारे दिव्य गीतपर देवता भी मुग्ध हो जाते हैं, किंतु तुम्हारे गीतके सुस्वर, ताल और लयसे तथा मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाले भावसे मेरा मन विचलित होता है, इसलिये मेरा अनुरोध है कि तुम यह स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाओ।' विद्याधरने उत्तर दिया—'ब्राह्मणदेवता! संगीत आत्मज्ञानके समान है। मैं दूसरे स्थानमें क्यों जाऊँ? अपने गायनसे मैं किसीको कभी दु:खी नहीं करता; बल्कि सदा लोगोंको सुखी ही करता हूँ। मेरे गीतसे देवता संतुष्ट होते हैं; यहाँतक कि भगवान् शिवको भी मैंने इससे मुग्ध होते देखा है। गीत सर्वरसमय है और आनन्ददायक शृङ्गारादि समस्त रस गीतमें ही प्रतिष्ठित हैं। अधिक क्या, इस गीतसे चारों वेदोंकी शोभा है, फिर भी आप गीतकी निन्दा करते हैं और मुझे भगा रहे हैं; यह तो स्पष्टत: आपका अन्याय है।'

पुलस्त्यने कहा—'भाई! तुम्हारी यह बात तो ठीक है कि गीत बड़ा ही आनन्दप्रद है। तुम मेरा मतलब न समझकर उत्तेजित हो गये। मैं गीतकी निन्दा नहीं करता; मैं भी तुम्हारी तरह उसका प्रशंसक हूँ, किंतु तुम जानते होगे कि विद्याएँ चौदह प्रकारकी हैं। वे चौदहों प्रकारकी विद्याएँ एकनिष्ठ हुए बिना फलदायिनी नहीं होतीं। जब मन निश्चल हो जाता है, तभी ये प्राणियोंको सिद्धि प्रदान करती हैं। एकनिष्ठासे ही तप और मन्त्र सिद्ध होते हैं। तुम जानते हो, इन्द्रियाँ चञ्चल हैं। ये मनको ध्यानसे हटाकर जबर्दस्ती विषयभोगोंमें आसक्त कर देती हैं। इसीलिये जहाँ शब्द, रूप या कामिनीका अभाव होता है वहाँ एकान्तमें बैठकर मुनिलोग ध्यान-

तप करते हैं। तुम्हारा गाना मनोहर है, सुख देनेवाला है। पर इस समय इसके कारण मेरे मनको एकनिष्ठ और केन्द्रित होनेमें बाधा पड़ती है, इसलिये मैं इसे सुनना नहीं चाहता। इसीलिये अनुरोध करता हूँ कि तुम इस स्थानको छोड़कर दूसरी जगह चले जाओ। अगर तुम न जाओगे तो मुझे यह स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा।' विद्याधरने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! जिसने इन्द्रियोंको तथा उनके बलको जीत लिया है, उन्हींको विजयी, योगी, धीर और साधक कहते हैं। जो शब्द सुनकर अथवा रूपका दर्शनकर विचलित नहीं होते, वे ही धीर और तपस्वी-पद प्राप्त करनेयोग्य हैं। आप इन्द्रियोंके वशमें हैं, इसीलिये निस्तेज हैं। मेरे गायनका तिरस्कार करनेकी शक्ति स्वर्गमें भी किसीको नहीं है। और देखिये, हीनवीर्य व्यक्ति ही वनका त्याग करते हैं। वनप्रदेश सबके लिये है, वह सबकी चीज है—इसमें क्या देवता, क्या दूसरे जीव, क्या मैं और क्या आप, सबका समान अधिकार है। इसलिये मैं इस उत्तम वनको छोड़कर क्यों जाऊँ? आप जायँ या रहें, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

इस प्रकारके दुराग्रहीसे तर्क करनेमें कोई लाभ न देखकर मुनि विचार करने लगे कि क्या करना चाहिये। अन्तमें वे विद्याधरको क्षमाकर दूसरी जगह चले गये और वहाँ सब इन्द्रियोंको संयत करते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोहका त्याग करके योगारूढ़ हो तपस्या करने लगे।

मुनिके चले जानेके पश्चात् एक दिन विद्याधरको उनकी याद आयी। वे सोचने लगे कि मेरे भयसे ही मुनिने यह स्थान छोड़ दिया है। अब यहाँ दिखायी नहीं पड़ते। वे कहाँ चले गये, कहाँ रहते हैं और किस तरह क्या करते हैं? अभिमानके कारण विद्याधरका मन प्रमादसे भर गया था और कालकी प्रेरणासे वे अधर्म-पथपर चल रहे थे। उन्होंने उस स्थानका पता लगाना आरम्भ किया, जहाँ मुनि निवास करते थे। जब स्थानका ठीक पता चल गया, तब एक दिन वे शूकररूप धारणकर महात्माके आश्रममें गये। उन्होंने देखा कि महातेजस्वी मुनि शान्त और स्थिर मुद्रासे ध्यानमें लीन हैं। कालवश होकर वे मुनिका ध्यान भङ्ग करने लगे, अपना थूथुन उनके शरीरसे रगड़ने लगे। फिर भी मुनिने पशु जानकर उनका अपराध क्षमा कर दिया, परंतु इसका कुछ भी परिणाम न निकला। मुनिकी करुणाका शूकररूपधारी मेरे पतिपर उलटा असर हुआ। वे मुनिके सामने मल-मूत्र

शूकरीके पूर्वजन्मकी कथा

शूकरीके मुँहसे यह कथा सुनकर रानी सुदेवाने उससे फिर पूछा—'कल्याणि! तुम पशुयोनिमें हो, फिर भी अच्छी संस्कृत भाषा बोल रही हो। तुम्हें इतना ज्ञान कैसे हुआ और तुम्हें अपना तथा पतिका चरित कैसे मालूम हुआ? यह सब मुझे बताओ।'

शूकरी बोली—महादेवी! मैं तलवारकी धारसे चोट खाकर यहाँ पड़ी हुई हूँ। मूर्च्छाके कारण मेरे ज्ञानका लोप हो गया था। ऐसे समय तुमने अपने पवित्र हाथोंसे पवित्र और शीतल जल मुखमें डाला तथा उसके छींटे दिये। इससे मेरा मोह दूर हो गया है। हे शुभे! जिस प्रकार सूर्यसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे स्पर्श और अभिषेकसे मेरे पाप नष्ट हो गये हैं। सुन्दरी! मैंने तुम्हारी कृपासे पूर्वज्ञान प्राप्त किया है। अब मैं दिव्य गति प्राप्त करूँगी, इसका मुझे विश्वास हो गया है। भद्रे! मैंने पूर्वजन्ममें अनेक पाप किये थे। वह सारी कथा मैं तुम्हें सुनाती हूँ।

कलिंग देशमें श्रीपुर नामका एक नगर था। यह नगर सब प्रकारके वैभवसे पूर्ण था। वहाँ वसुदत्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। वसुदत्त धर्मपरायण, वेदका ज्ञाता, ज्ञानवान्, गुणवान् तथा धन-धान्यसम्पन्न था। पुत्र-पौत्रोंसे उसका घर अलंकृत था। मैं इसी वसुदत्तकी कन्या थी। मेरे कई भाई थे। मेरे बुद्धिमान् पिताने मेरा नाम 'सुदेवा' रखा था। वे मुझपर बड़ा स्नेह रखते थे। घरमें किसी प्रकारका अभाव न था। भगवान्‌ने मुझे परम रूपवती बनाया था। जो देखता वही कहता कि संसारमें ऐसी रूपवती दूसरी कन्या नहीं देखी। मैं हँसती, खेलती, शृङ्गार करती और अपनेमें मस्त रहा करती। घर-बारके लोग मेरा ब्याह शीघ्र कर देनेका आग्रह पितासे करने लगे, पर उनकी मुझपर ऐसी ममता थी कि मेरे बिछुड़नेकी बातसे उन्हें दुःख होता था। इसलिये वे टालते जा रहे थे। धीरे-धीरे मेरा लड़कपन बीता, जवानी आयी, मेरा भरा-पूरा नदीकी बाढ़-सा प्रखर यौवन देखकर माता दुःखी हुईं। उन्होंने पिताजीसे मेरे रूप-यौवनकी चर्चा करते हुए आग्रह किया कि वे शीघ्र किसी उत्तम, गुणवान् और स्वस्थ ब्राह्मण वरकी खोजकर मेरा विवाह कर दें। पिताजीने उत्तर दिया—'महाभागे! मैं भी सुदेवाके विवाहके लिये चिन्तित हूँ पर मेरी स्नेह-कातरता इसमें बाधक

त्यागकर नाचने-दौड़ने लगे। कभी उछलते, कभी भयानक शब्द करते, फिर भी मुनिने उन्हें पशु जान अपनी स्वाभाविक करुणासे इन सब दुष्कृत्योंको क्षमा कर दिया। मेरे पतिपर उनकी दया-क्षमाका फिर भी कोई प्रभाव न पड़ा और उनका प्रमाद बढ़ता ही गया। उस दिन तो वे लौट आये, पर थोड़े समय पश्चात् फिर एक दिन मुनिके आश्रममें जाकर उत्पात मचाने लगे। कभी अट्टहास करते, कभी रोते, कभी सुन्दर और मधुर स्वरमें गायन गाते। उनके इन कृत्योंसे मुनिके मनमें शङ्काका उदय हुआ और ध्यान करके उन्होंने जान लिया कि यह वराह नहीं है, यह तो वही नीच गन्धर्व है और यहाँसे भी मुझे भगानेके लिये आया है। तब मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने यह कहकर शाप दे दिया कि 'अरे पापी! तुमने शूकररूप धारण करके मुझे विचलित किया है, अतः तुम पापमय शूकरयोनिको प्राप्त हो।' मेरे पति मुनिके शापसे भयभीत होकर इन्द्रके पास गये और काँपते तथा डरते हुए उनसे बोले—'मैंने तो आपका ही काम किया है। वे मुनि अपनी तपस्याके कारण आपलोगोंके लिये भयप्रद हो रहे थे। मैंने उन्हें तपके प्रभावसे विचलित और क्षुब्ध किया है। मुनिके शापसे मेरा देवरूप नष्ट हो गया है, मैंने पशुयोनि प्राप्त की है। अब आप मेरी रक्षा कीजिये।' विद्याधरकी इस बातसे इन्द्र दुःखी हुए, उन्होंने उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की और उन्हें लेकर वे मुनिके पास गये। इन्द्रने मुनिसे विनीत होकर प्रार्थना की कि आप इस अज्ञान गन्धर्वका अपराध क्षमा कर दीजिये। आप सिद्ध हैं, तप और शान्ति ही आपकी शोभा है। कालवश भ्रमित होकर इसने जो पापाचरण किया है, उसके लिये यह आपकी करुणा और दयाका पात्र है; क्योंकि इसने अज्ञानके नशेमें यह सब किया है; इसलिये जिस प्रकार आपके शापसे इसे मुक्ति मिले वह उपाय कीजिये।'

इन्द्रकी प्रार्थनापर सरल-हृदय मुनि सदय हो गये और बोले—'इन्द्र! आगे इक्ष्वाकु नामके एक परम धर्मात्मा राजा जन्म लेंगे। जब उनके हाथसे शिकारमें, इस विद्याधरकी मृत्यु होगी, तब यह फिर अपना वास्तविक शरीर प्राप्त करेगा।'

हो रही है। मै अपनी प्यारी कन्याका बिछोह नहीं सहन कर सकता। इसलिये ऐसे वरकी खोजमें हूँ, जो मेरे घरपर ही रहे।'

इसके बाद कुछ दिन बीत गये। एक दिनकी बात है कि एक ब्राह्मण युवक भिक्षा माँगने हमारे घर आये। वे अत्यन्त तेजस्वी, वेदस्वाध्यायी, गुणवान्, शीलवान् थे। बातचीतसे मालूम हुआ कि उनके माता-पिताका देहान्त हो चुका है। मेरे पिताने उनसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपा करके अपने नाम, कुल, गोत्र, आचार आदिका परिचय मुझे दीजिये।' उन्होंने उत्तर दिया—'मैंने कौशिक कुलमें जन्म ग्रहण किया है। मैं मातृ-पितृहीन हूँ। मैंने वेद-वेदाङ्गोंका विधिवत् अध्ययन किया है। मेरा नाम शिवशर्मा है। मेरे चार भाई भी हैं, जो वेदका ज्ञान रखते हैं।'

पिता उन युवक ब्राह्मणसे बहुत प्रसन्न हुए। वे तो ऐसे ही वरकी खोजमें थे। शुभ तिथि और लग्नमें पिताने उन्हीं शिवशर्मासे मेरा ब्याह कर दिया। तबसे मैं उनके साथ पिताके घर ही रहने लगी, परंतु वैभव तथा पिताके लाड़-प्यारके बीच पली होनेके कारण मेरी विचारशक्तिका लोप हो गया था। मुझमें घमंड आ गया था। मैं सदा माता-पिताके ऐश्वर्यके गर्वमें मतवाली रहती। पतिकी परवा नहीं करती। कभी पतिके अनुगमनका, उनकी सेवा-सहायताका भाव मेरे मनमें नहीं आता था! मैं उनसे हार्दिक स्नेहपूर्वक कभी प्रेमालापतक न करती थी। धीरे-धीरे मैं नीच भावोंके गड्ढेमें डूबती गयी। मैं जहाँ जाती, मनमाना आचरण करती, माता-पिता, भाई, पति—किसीका कोई हित मैं नहीं कर सकती थी। मेरे पति बड़े ही शान्त-स्वभावके और बुद्धिमान् पुरुष थे। वे सब देख रहे थे, पर सास-ससुरके स्नेहवश मुझे कुछ न कहते, सदा क्षमा कर दिया करते। मैं दिन-दिन उद्दण्ड होती गयी, अधर्माचरण करने लगी। मेरे पतिके साधुस्वभाव और मेरी चञ्चलताको देख-देखकर मेरे माता-पिता भी दुःखी रहने लगे। मेरे पति बहुत दिनोंतक आशा करते रहे कि मुझे सुबुद्धि आयेगी, पर मैं दिन-दिन गिरती ही गयी। पति मुझसे कुछ न कहते, पर मन-ही-मन बड़े दुःखी थे। जबतक उनसे चुप रहकर सहते बना, वे सहते रहे, अन्तमें घर यहाँतक कि वे देश भी छोड़कर चले गये!

इन सब बातोंके कारण पिता बहुत दुःखी हुए। मेरे यौवन और रूपकी चिन्तासे उनका शरीर गलने लगा। उनका स्वस्थ शरीर खोखला हो गया। देखनेपर वे वर्षोंके रोगी जान पड़ते थे। मेरी माताने उनकी यह

अवस्था देखकर उनसे कहा—'नाथ! आप क्यों इतने चिन्तित हैं। हमारी इस कन्याके दोषसे यह सब हुआ है। यह निष्ठुर और पापाचारिणी है। इसीने देवता-समान पतिको छोड़ दिया था। हमारे दामाद बड़े ही सज्जन थे। वे सम्पूर्ण कुटुम्बियोंके प्रति सद्‌भाव रखते थे। सुदेवाने कभी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वदा ऐसे आचरण करती रही, जिसमें पतिके प्रति घोर अपमान और तिरस्कारका भाव था। इतनेपर भी शिवशर्माने कभी उसे कुछ न कहा। वह कभी इसकी बुराई न करते थे। मैं क्या जानती थी कि यह कन्या ही कुलनाशिनी होगी। पर एक बात कहूँगी। आपने ही इसे मोह और लाड़-प्यारमें बिगाड़ा। नीतिशास्त्रके नियमोंपर आपने ध्यान नहीं दिया। आप जानते हैं, पाँच वर्षकी आयुतक ही संतानका लालन-पालन और दुलार किया जाता है। उसके बाद उत्तम आचार-विचार, भोजन, वस्त्र, स्नान-ध्यान और शिक्षाद्वारा उसको विकसित करना चाहिये। गुण तथा सद्‌विद्यासे संतानको सुशोभित करना चाहिये। संतानकी गुण-शिक्षा और विद्याके विषयमें माता-पिताको मोह न करना चाहिये। प्रतिदिन उसे आवश्यक शिक्षा देनी चाहिये और जरूरत पड़नेपर डाँट-डपटसे भी काम लेना चाहिये। यह सब इसीलिये किया जाता है कि भूलसे या छलसे भी संतान पापके समीप न जाय, नित्य सुविधा तथा सद्गुणोंका अभ्यास करे। इसी प्रकार माताको कन्याकी, ससुरको पुत्रवधूकी और गुरुको शिष्यकी सँभाल करनी चाहिये। यदि ऐसा न किया जायगा तो उनकी उत्तम क्रिया नहीं हो सकेगी। इसी तरह पतिको पत्नीकी, राजाको मन्त्रीकी और परिचालकको हाथी-घोड़ेकी प्रतिदिन सँभाल करनी चाहिये। आपने इन बातोंका विचार नहीं किया। जरूरतसे ज्यादा लाड़-प्यार और दुलारमें लड़कीको बिगाड़ दिया। वह चरित्रहीना हो गयी। दामादको अपने आश्रयमें रखकर आपने कन्याको अभिमानिनी और निरंकुश कर दिया। यौवनकालमें कन्याको पितृगृह (मायके) में अधिक दिन नहीं रखना चाहिये। कन्या जिसको सौंप दी जाती है, उसीके घर शोभा पाती है। पतिके घर रहनेपर उसे अपना घर समझती है और पतिके प्रति अनुरक्त होती है। उसकी सेवा करती है। इससे कुलकी कीर्ति बढ़ती है और पिता सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है। कन्याको कभी दामाद (जामाता) के साथ दीर्घकालतक घरमें नहीं रखना चाहिये।'

कंसमाता पद्मावतीकी कथा

शूकरी आगे कहती गयी—'मेरी माताने पिताजीको तरह-तरहसे समझाया। इस सम्बन्धमें उसने द्वापरयुगके यदुवंशी राजा उग्रसेनकी कथा भी सुनायी, जिसमें उनकी स्त्री पद्मावतीके मायकेमें रहनेका बुरा परिणाम बताया गया था।'

रानी सुदेवा बोली—'उग्रसेनकी वह कथा क्या है और तुम्हारी माताने तुम्हारे पिताको क्या कहा था? तुमको कष्ट न हो तो मैं सुनना चाहती हूँ।'

शूकरी बोली—'महादेवी! तुमने मेरा कल्याण किया है। तुम्हारे ही कारण मेरे सब पाप धुल गये हैं। इसलिये मैं अवश्य तुम्हें सारी कथा सुनाऊँगी, सुनो।'

मथुरा नगरीमें यदुवंशी उग्रसेन नामक एक श्रेष्ठ राजा राज्य करते थे। वे बड़े प्रतापी, शूर, धर्मके ज्ञाता, दाता और गुणवान् नरेश थे। वे धर्मानुसार राज्य करते और प्रजाका पालन करते थे। उपयुक्त समयपर राजा उग्रसेनने राजकुमारी पद्मावतीका पाणिग्रहण किया। पद्मावती विदर्भनरेश सत्यकेतुकी कन्या थी। वह परम सुन्दरी थी। उसके रूपकी कोई तुलना न थी। रूपके समान गुणमें भी वह एक ही थी। उसमें स्त्रियोचित सभी गुण थे। वह साक्षात् लक्ष्मीके समान थी। महाराज उग्रसेन उसे प्राणोंसे अधिक प्यार करते थे। सदा अपने साथ रखते थे। दोनोंमें अत्यधिक प्रेम था।

इस तरह ससुरालमें पद्मावतीके दिन सुखसे बीत रहे थे, पर माता-पिता अपनी लाड़ली बेटीकी सदा याद करते और उसे देखनेको तरसते रहते थे। जब उनकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गयी, तब राजा सत्यकेतुने बेटीको बुलानेके लिये उग्रसेनके पास मथुरा अपना एक विश्वस्त दूत पत्रके साथ रवाना किया। समयपर दूत मथुरा पहुँचा। उसने बड़ी चतुराईसे अपना संदेश सुनाया और आनेका कारण बताया। महाराज उग्रसेनने सासु-ससुरके संतोषके लिये पद्मावतीको दूतके साथ, उसके मायके भेज दिया।

जैसा कि स्वाभाविक है, पद्मावतीको मायके जानेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने माता-पिताके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया तथा सब

कुटुम्बियों और सखी-सहेलियोंसे वह बड़े प्रेमके साथ मिली। पद्मावतीके आनेसे सब लोग आनन्दमें भर गये।

पद्मावती सुख और स्वतन्त्रतापूर्वक वहाँ रहने लगी। लड़कपनमें जिस प्रकार वह खेलती, कूदती, वन-विहार करती, उसी तरह अब भी आनन्दमें मग्न रहने लगी। सखियोंके साथ नित्य कहीं-न-कहींका कार्यक्रम बनता। धीरे-धीरे उसे ससुरालकी याद भूलने लगी और उसे अनुभव होने लगा कि यहाँ जो आराम और स्वतन्त्रता है वहाँ नहीं है। यहाँ जीवन निर्द्वन्द्व है, कोई जिम्मेदारी नहीं है, कहीं कोई रुकावट या प्रतिबन्ध नहीं। सरिताकी तरह निरन्तर बहनेवाला यह जीवन है। कैसा आनन्द है यहाँ!

अब उसके मनमें यह भाव आने लगा कि क्यों न मैं सदा इसी तरह यहीं रहूँ। पतिका ध्यान शिथिल होने लगा और संसारकी अन्य वस्तुओंमें अनुरक्ति बढ़ने लगी। अवश्य ही यह उसका बड़ा प्रमाद था।

एक दिन सहेलियोंके साथ पद्मावती एक सुन्दर पहाड़पर सैरके लिये गयी। पहाड़से लगा हुआ, उसकी तराईमें एक परम मनोहर रमणीय वन था। इसमें तरह-तरहके फल लगे हुए थे, सुदर्शन तथा सुगन्धित पुष्पोंसे समस्त अरण्य सुशोभित और सुरभित था। वनके बीच अनेक मनोरम तालाब थे। जिनमें स्वच्छ जल लहरा रहा था, नाना वर्गके कमल खिले हुए थे। हंस आदि पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। पक्षियोंकी चहचहाहटसे वन जीवित-सा लगता था। ऐसे मनोहर स्थानको देखकर पद्मावती सब कुछ भूल गयी।

उसका हृदय आनन्दसे भर गया। उसके मनमें जलविहारकी कामना उत्पन्न हुई। वह सहेलियोंके साथ तालाबमें उतरकर जल-क्रीड़ा करने लगी। कभी सब तैरतीं, कभी डुबकी लगातीं, कभी एक-दूसरेपर छींटे उछालतीं; कभी हँसतीं। यौवन-सुलभ चपलता और अल्हड़तामुक्त होकर नाच रही थी।

संयोगसे उस समय कुबेरका अनुचर दैत्य गोभिल अपने विमानपर सुखपूर्वक बैठा आकाशमार्गसे कहीं जा रहा था। उसका विमान उसी

तालाबके पाससे निकला। गोभिलकी दृष्टि पद्मावतीपर पड़ी। पद्मावती सचमुच अद्वितीय रूपवती थी। फिर चञ्चलता और मनोहर जलक्रीड़ाके कारण उसका रूप और भी लुभावना हो रहा था। गोभिलके मनमें उस परम सुन्दरी पद्मावतीको देखते ही विकार उत्पन्न हो गया। अपने तपके बलपर उसे यह जानते देर न लगी कि वह कौन है। यह जानकर कि वह विदर्भकी राजकुमारी और मथुराके महाराज उग्रसेनकी पत्नी है, पहले उसने सोचा कि यह मेरे लिये दुष्प्राप्य है। पर उसकी आँखें पद्मावतीपरसे हटती ही न थीं। उसके मनमें नाना प्रकारके भाव-कुभाव आने लगे। वह सोचने लगा कि इसका पति उग्रसेन कैसा मूर्ख है जो ऐसी रूपवती, युवती पत्नीको अपने पाससे दूर मायकेमें भेज दिया है और स्वयं इसके वियोगमें बुरी तरह दिन बिता रहा है।

ज्यों-ज्यों सोचता, उसकी कुवासनाएँ प्रबल होती जातीं। अन्तमें उसने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि परिणाम कुछ भी हो, किसी-न-किसी प्रकार इसे अवश्य प्राप्त करना चाहिये। कामनाके वश होकर मनुष्य इसी प्रकार पतित हुआ करता है।

उसने अपना विमान धीरेसे पहाड़के नीचे एक झुरमुटके पीछे उतारा और अपनी मायासे उग्रसेनका रूप धारण किया। महाराज उग्रसेन जैसे थे, ठीक वैसा ही बन गया, एक-एक अङ्ग, एक-एक बात मिलती थी। वही स्वर, वही भाषा, वही वस्त्र, वही वेष, वही रूप-रस-रंग, वही ढाँचा और वही उम्र। महाराज उग्रसेनकी तरह ही वह सुन्दर आभूषणों और दिव्य गन्धोंसे सुशोभित हो गया। पूरी तैयारी करके पर्वतके निचले भागमें, एक अशोक वृक्षकी छायामें शिलाखण्डपर बैठ गया और वीणा हाथमें लेकर बजाने लगा। फिर उसने सुन्दर स्वर-लयसे युक्त गीत गाना शुरू कर दिया। उसके गाने-बजानेमें इतना आकर्षण था कि मानो समस्त वनस्थली उसीके स्वरमें तन्मय हो रही थी। पद्मावती भी मुग्ध होकर उस गीतको सुनने लगी। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो कोई उसे अपनी तरफ खींच रहा है। तब वह अपनी सखियोंके साथ उधर गयी। थोड़ी दूरसे देखा कि अशोकको छायामें विमल शिलापर कोई बैठा है, उसका शरीर

दिव्य गन्धोंसे पूर्ण है। वह सुन्दर पुष्पोंकी माला धारण किये हुए है। जब साफ-साफ उसका मुँह दिखायी दिया तो पद्मावती आश्चर्यसे ठक रह गयी। अरे! मेरे प्राणनाथ महाराज मथुराधिपति अपने राज्यसे कब यहाँपर आ गये। वह सोच ही रही थी कि दुरात्मा गोभिलने पुकारा—'प्रिये! इधर आओ।' पद्मावती इससे और भी चकित और शङ्कित होकर विचारने लगी—'मेरे पति यहाँ कैसे आये।' ज्यों-ज्यों सोचती त्यों-त्यों उसकी लज्जा और ग्लानि बढ़ती जाती। वह सोचने लगी—'मैं दुराचारिणी हूँ, मैं निर्लज्ज और निःशङ्क होकर फिर रही हूँ, इससे अवश्य ही मेरे पति क्रोधित होंगे।' इसी समय दैत्यने फिर पुकारकर कहा—'प्रिये! शीघ्र आओ। तुम्हारा वियोग अधिक दिनोंतक मुझसे सहा नहीं गया, इसीसे मैं यहाँ आ गया।' पद्मावतीने उसे पति समझकर संकोच और लज्जाभरी आँखोंसे उसे देखा। तब वह उग्रसेनरूपधारी दैत्य पद्मावतीको एकान्तकी ओर ले गया और इच्छानुसार उसका उपभोग किया। पद्मावती भी मोहाविष्ट हो गयी थी; क्योंकि मायकेमें जाकर इतने दिनोंसे अल्हड़ जीवन बिता रही थी; पर इस घटनाके बाद और पतिरूपधारी उस दैत्यका मर्यादाहीन व्यवहार देखकर उसे कुछ शङ्का हो गयी। मनमें शङ्का आते ही उसे बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। वह क्रुद्ध होकर बोली—'रे पापी! तू कौन है? तूने मेरे पतिका नकली वेष बनाकर मेरे पवित्र पातिव्रतधर्मको नष्ट कर दिया, मेरा जन्म कलुषित कर दिया। फिर पद्मावती रोती हुई बोली—'मैं तुझे शाप दूँगी। अब तू मेरा प्रभाव देख।'

गोभिल बोला—'तुम मुझे शाप क्यों देना चाहती हो? मैंने क्या अपराध किया है, जो तुम शाप देनेको तैयार हो। शुभे! मैं कुबेरका अनुचर हूँ, मेरा नाम गोभिल है, मैं दैत्य हूँ, अतः स्वभावतः दैत्योंका आचार ही मेरा आचार है। उत्तम विद्याओंका ज्ञान मुझे है। मैं वेद-शास्त्रका जानकार और सब कलाओंमें निपुण हूँ। दैत्योंका आचार होनेके कारण परायी स्त्री और पराये धनका बलपूर्वक उपभोग करना ही मेरा स्वभाव है। हम दैत्य हैं, हमलोग प्रतिदिन ब्राह्मणोंका छिद्रान्वेषण करते

हैं। विघ्न डालकर उनकी तपस्या भंग करना हमारा काम है। देवि! छिद्र मिल जानेपर हम ब्राह्मणोंका भी नाश कर डालते हैं। हम यज्ञका नाश करते हैं। हाँ, सुब्राह्मण, विष्णु और पतिपरायणा पतिव्रता नारीके पास हमलोग नहीं जाते। देवि! सुब्राह्मण, भगवान् विष्णु और पतिव्रता नारीका तेज सहन करनेमें दैत्य असमर्थ हैं। इन तीनोंके भयसे दानव और राक्षस दूर भाग जाते हैं। मैं पृथ्वीतलपर अपने दानव-धर्मका आचरण करता हुआ विचरण करता हूँ। तुम क्यों मुझे शाप देनेके लिये तैयार हुई हो। मेरा दोष क्या है, इसका विचार करो।'

पद्मावती दैत्यकी बातोंसे और भी क्रुद्ध हुई और बोली—'अरे दुष्ट! मेरी पवित्र देह और धर्मको तूने नष्ट कर दिया। मैं पतिव्रता, साध्वी, पतिकामा, तपस्विनी हूँ, अपने धर्मपर आरूढ़ रहती हूँ। पापमायासे धोखा देकर तूने मुझे नष्ट किया है। इसलिये मैं तुझे अवश्य ही शापकी अग्निमें जलाऊँगी।'

गोभिल बोला—'राजकुमारी! मेरी बात सुनो। जो प्रातः-सायं होम करता है, अग्निगृहका परित्याग नहीं करता, वह अग्निहोत्री है। वरानने! अब भृत्य अथवा सेवक-धर्म कहता हूँ। तन-मन-वचनसे विशुद्ध होकर नित्य जो व्यक्ति आज्ञा-पालन करता है तथा स्वामीके आगे-पीछे रहता है, वह पुण्यवान् भृत्य है। जो गुणवान् पुत्र तन-मन-कर्मसे विशेषरूपसे माता-पिताका पालन करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। अब उत्तम पातिव्रत-धर्म कहता हूँ। वचन, मन और कर्मसे जो नारी प्रतिदिन पतिकी सेवा करती है, पतिके प्रसन्न होनेपर जो नारी प्रसन्न और पतिके दुःखी होनेपर जो नारी दुःखी होती है, पतिके क्रोध करनेपर भी जो उसे छोड़कर नहीं जाती, जो नारी सब कामोंमें पतिके आगे रहती है, वही स्त्री पतिव्रता कही जाती है। पिता पतित हों, उनमें अनेक दोष हों, कोढ़ी या क्रोधी हों, पर पुत्रका कर्तव्य है कि उन्हें कभी न छोड़े। इस प्रकार पिता-माताकी सेवा करनेवाला पुत्र विष्णुधामको प्राप्त होता है। उपर्युक्त रूपसे सेवा करनेवाले सेवककी भी वैसी ही गति होती है तथा पतिसेवा करनेवाली नारी भी पतिलोकमें जाती है। नारी यदि संसारमें कल्याणकी

इच्छा रखती हो तो किसी भी अवस्थामें उसे पतिका परित्याग नहीं करना चाहिये। पतिकी अनुपस्थितिमें जो नारी लोलुपतावश शरीरको गहने-कपड़ोंसे सजाती है, भोग और शृङ्गारका सेवन करती है, लोग उसे बुरा कहते हैं।

'हे शुभे! मैं सब धर्मोंको जानता हूँ। जो मनुष्य अपने धर्ममार्गको छोड़कर चलते हैं, उनका शासन करनेके लिये ही दानवोंकी सृष्टि हुई है। जितने नराधम अवैध धर्मका आचरण करते हैं यानी अपने निश्चित धर्मके विपरीत चलते हैं हमलोग कठोर दण्डके द्वारा उनका शासन करते हैं। तुमने भी गलत मार्गपर पाँव रखा। गृहस्थ-धर्मका परित्याग कर यहाँ तुम किसलिये आयी? तुम मुँहसे तो अपनेको पतिव्रता कहती हो, किंतु कर्ममें, आचरणमें तुम्हारा पातिव्रत्य कहीं दिखायी नहीं देता। तुम पतिको छोड़कर किसलिये यहाँ आयी थी? तुम पतिके बिना शृङ्गार करके इस एकान्त स्थानमें क्यों आयी? किस मतलबसे, किसको दिखानेके लिये तुमने ऐसा किया था? तुम प्रमत्त और निःशङ्क होकर पहाड़ और वनमें घूमती हो। मैंने दण्डके द्वारा तुम्हारे पापका फल प्रदान किया है। तुम दुष्टा और अधर्मचारिणी हो; पतिको छोड़कर यहाँ आराम और सुख भोगने आयी हो? मुझे दिखाओ, कहाँ तुम्हारा पातिव्रत्य है? तुम मेरे सामने क्या बोलती हो? तुम्हारे अंदर तपका प्रभाव कहाँ है? तुम्हारे अंदर तेज कहाँ है? यदि हो तो आज मुझे अपना बल-वीर्य (पराक्रम) दिखाओ।'

पद्मावती बोली—'अरे अधम असुर! सुन, पतिके घरसे मेरे पिता स्नेहवश मुझे यहाँ ले आये हैं। मैं पतिकी आज्ञासे यहाँ आयी हूँ। इसमें मेरा क्या दोष है? मैं काम, लोभ, मोह, मात्सर्यके वशीभूत हो पतिको छोड़कर तो आयी नहीं हूँ। यहाँ भी मैं पतिभावको धारण करती हुई रह रही हूँ। तूने छलसे मेरे पतिका रूप धारणकर मुझे ठगा है। मैं मथुरानरेश जानकर ही तेरे सामने आयी थी। यदि मैं जानती कि तू मायावी है तो एक ही हुंकारमें तुझे जलाकर राख कर देती।'

गोभिल बोला—'अन्धोंको दिखायी नहीं पड़ता। तुम धर्मनेत्रहीन हो, फिर कैसे मुझे पहचानती? पिताके घर तुम पतिका ध्यान छोड़कर ध्यानमुक्त

हो गयी थी। इसीके कारण तुम्हारी ज्ञानकी आँखें बंद हो गयी थीं। व्यर्थके आमोद-प्रमोद तथा सजाव-शृङ्गारके मोहसे पतिको पहचाननेकी तुम्हारी दृष्टि ही नहीं रह गयी थी। तब तुम मुझे कैसे पहचानती?' यह कहकर दानवाधम गोभिल अट्टहास करता हुआ बोला—'अरी पुंश्चली! तुमसे मुझे कोई भय नहीं है। तुम्हारे शापसे मेरा क्या होगा? तुम व्यर्थ ही काँप रही हो। व्यर्थ डींगें मार रही हो।'

पद्मावतीने कहा—'दूर हो पापी! तू घृणितोंकी तरह क्या बक रहा है? मैं सतीभावसे रहनेवाली पतिव्रता हूँ, यदि मुझसे ऐसी बात करेगा तो मैं तुझे भस्म कर डालूँगी।' यह कहकर पद्मावती बड़ी दुःखी होकर जमीनपर बैठ गयी। आत्मग्लानि और पश्चात्तापसे उसका हृदय भर गया और वह फूट-फूटकर रोने लगी। गोभिलने उससे कहा—'तुम्हारे उदरमें मेरा जो वीर्य है, उससे तुम्हें संसारको महान् त्रास देनेवाला एक भयंकर पुत्र उत्पन्न होगा।' यह कहकर वह चला गया।

पद्मावतीके रोनेसे जंगल काँपने लगा। तब सब सखियाँ, जो उसे मायावी पतिके निकट समझकर दूर चली गयी थीं, दौड़कर आ पहुँचीं। उन्होंने रोने और दुःख करनेका कारण पूछा। पद्मावतीने अपने छले जानेकी सम्पूर्ण घटना उनको बतला दी। सखियाँ बड़ी चिन्तित हुईं। वे बड़ी कठिनाईसे उसे उसके पिताके घर ले गयीं। बड़े संकोच और ग्लानिके साथ वह घरके अंदर गयी। सखियोंने सारी घटना पद्मावतीकी माताको बतायी। माता घबरायी हुई अपने पतिके पास गयी और उनसे सारी घटना बतायी। राजा सत्यकेतु उसे सुनकर बड़े दुःखी हुए। अब उन्होंने सोचा कि कन्याको बिना बात बढ़ाये चुपचाप मथुरा भेज देना चाहिये। उन्होंने सब प्रबन्ध कर कन्याको मथुरा भेज दिया। उसका दोष छिपा लिया।

धर्मात्मा उग्रसेन प्यारी पत्नी पद्मावतीको पुनः घर लौटे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर दिन उसी तरह बीतने लगे। क्रमशः सब लोकोंको भय देनेवाला दारुण गर्भ बढ़ने लगा। पद्मावतीको तो उस गर्भका रहस्य मालूम ही था, इसलिये वह खिन्न रहने लगी। रात-दिन वह उसीके विषयमें चिन्ता करती रहती। उसने सोचा ऐसे लोकनाशक दुष्ट पुत्रको

जननेसे क्या लाभ? उससे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? इसलिये इसे नष्ट कर देना चाहिये। उसने इधर-उधरसे पूछकर गर्भपात करनेवाली ओषधियोंका संग्रह किया, गर्भपातके अनेक उपाय किये, किंतु कुछ फल न निकला। सब लोकोंको भय देनेवाला दारुण गर्भ बढ़ता ही गया। एक दिन उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो गर्भस्थ शिशु उसे सम्बोधन कर कह रहा है—'माता ! प्रतिदिन ओषधियोंका सेवनकर क्यों कष्ट उठाती हो? जीवनकी आयु पुण्यसे बढ़ती और पापसे नष्ट होती है। जीव अपने कर्मविपाकसे जीता और मरता है। कोई गर्भ धारण करते, कोई कच्चे गर्भमें, कोई पैदा होते और कोई युवा होकर मृत्युको प्राप्त होता है। बाल, वृद्ध, युवक सब कर्मविपाकके अनुसार जीते-मरते हैं। ओषधि, देवता, मन्त्र—ये सब निमित्तमात्र हैं। मैं कौन हूँ, यह तुम्हें मालूम नहीं। तुमने महाबलवान् कालनेमिका नाम सुना होगा। मैं वही कालनेमि हूँ। दानवोंमें महाबलवान् और त्रैलोक्यको भयभीत करनेवाला हूँ। घोर देवासुर-संग्राममें प्राचीन कालमें, देवोंने मुझे मारा था। मैं उसी वैरका बदला लेनेके लिये तुम्हारे उदरमें आया हूँ।'

गर्भ बराबर बढ़ता रहा। समयपर पद्मावतीके पेटसे महाबलवान् कंस पैदा हुआ। जिससे संसार भयभीत हो गया था और जिसे भगवान् श्रीकृष्णने मारकर पुनः शान्तिकी स्थापना की थी। हे कान्त! मैंने सुना है कि इस प्रकारकी घटना भविष्यमें घटेगी। अतएव कन्याको पिताके घर स्वतन्त्रतापूर्वक रहनेके लिये नहीं छोड़ना चाहिये। तुम भी इस दुष्टा कन्याका त्याग कर दो, अन्यथा महादुःख—महापाप होगा।

पातिव्रत्यके त्यागका कुपरिणाम

शूकरी कहती गयी—'मेरी माताकी बात मानकर पिताने मेरा त्याग करनेका निश्चय कर लिया और मुझे बुलाकर कहा—'बेटी! तुम्हें सब प्रकारके कपड़े-लत्ते, गहने मैंने दिये हैं। अब तुम भी जाओ और जहाँ तुम्हारे पति हों उनको खोजकर उनके साथ रहो अथवा तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ।' मैं इस प्रकार अपमानित होकर चल पड़ी, पर मैं कहीं भी रह न सकी, न सुख प्राप्त कर सकी। 'वही पुंश्चली आयी है' कहकर सब लोग मेरा तिरस्कार करने लगे। मैं कुल-मानसे रहित होकर देश-विदेश घूमने लगी। घूमते-घूमते एक समय गुर्जर देशके सौराष्ट्र प्रान्तके वनस्थल नामक नगरमें एक विशाल मन्दिरके समीप पहुँची। मैं भूखसे छटपटा रही थी। भिक्षापात्र लेकर द्वार-द्वार घूमने लगी, पर जहाँ जाती, वहीं लोग मुझे दुत्कार देते। आन्तरिक दुःख और भूखकी पीड़ासे व्यथित, माँगते-माँगते मैं एक बड़े घरके सामने पहुँची। वह घर बड़ा सुन्दर था। उसमें एक ओर वेदशाला थी और वेदध्वनि हो रही थी। नौकर-चाकर भी इधर-उधर आ-जा रहे थे। मैंने उस घरके द्वारपर जाकर भिक्षा माँगी। गृहस्वामीने अपनी सद्गुणी पत्नी मंगलासे कहा—'मंगले! एक दुर्बल स्त्री भिक्षाके लिये द्वारपर खड़ी है। उसे बुलाकर भोजन करा दो।' गृहिणी आकर मुझे अंदर लिवा ले गयी और बड़े आदरसे मुझे भोजन कराया। जब मैं भोजन कर चुकी, तब गृहस्वामीने मुझसे पूछा—'तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो, यहाँ कैसे आयी हो? किस कारण तुम सर्वत्र घूमती-फिरती हो? मुझे बताओ।' मैंने देखकर और कण्ठस्वरसे उन्हें पहचान लिया। वे मेरे पति धर्मात्मा शिवशर्मा थे। मैंने लज्जासे सिर झुका लिया और कनखियोंसे पतिकी ओर देखा। वे भी मुझे पहचान गये। मंगलाने स्वामीसे पूछा—'स्वामिन्! यह बाला कौन है, जो आपको देखकर लज्जा कर रही है। कृपया बतलाइये।'

शिवशर्माने कहा—'मंगले! यदि जानना चाहती हो तो सुनो। यह भिखारिणी ब्राह्मणश्रेष्ठ वसुदत्तकी कन्या है। इसका नाम सुदेवा है। यही सुदेवा मेरी प्रिय पत्नी है। शुभे! मेरे वियोगसे दुःखी होकर मेरी खोजमें यह यहाँ आयी है। अब तुम इसका परिचय पा गयी, इसलिये उत्तम रूपसे इसका सत्कार करो।'

पतिव्रता मंगला पतिकी बातसे बड़ी प्रसन्न हुई। उसने ले जाकर मुझे स्नान कराया, उत्तम वस्त्र पहनाये तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत किया। देवि! पतिके द्वारा इस प्रकार सम्मानित होनेपर मुझे अपने पूर्वकृत्योंपर भयंकर पश्चात्ताप होने लगा। पतिव्रता मंगलाका सम्मान देखकर मुझे बड़ी ग्लानि हुई। मेरे प्राणोंको ऐसी चोट लगी कि इसी दुःख और चिन्तामें मैं घुलने लगी। सोचती—'हाय! ऐसे धर्मात्मा पतिको पाकर भी मैं सुखी नहीं हुई। मैंने इनका निरन्तर तिरस्कार ही किया। कभी इनसे सीधे मुँह नहीं बोली, कभी इनकी सेवा नहीं की। अब मैं किस तरह इनसे सम्भाषण करूँगी।' मेरा हृदय दारुण व्यथासे जलने लगा और इसी दुःखमें एक दिन मेरे पापी प्राण निकल गये।

तदनन्तर यमराजके दूत आये और मेरी जीवात्माको साँकलके दृढ़

बन्धनमें बाँधकर यमपुरीको ले चले। मार्गमें जब मैं अत्यन्त दुःखी होकर रोती, तब वे मुझे मुगदरोंसे पीटते और दुर्गम-मार्गसे ले जाकर कष्ट पहुँचाते

थे। बीच-बीचमें मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराजके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराजने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और मुझे अँगारोंकी ढेरीमें फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकोंमें डाली गयी। मैंने अपने स्वामीके साथ धोखा किया था, इसलिये एक लोहेका पुरुष बनाकर उसे आगसे तपाया गया और उसे मेरी छातीपर सुला दिया गया। नरककी प्रचण्ड आगमें तपायी जानेपर मैं नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे अत्यन्त कष्ट पाने लगी। असिपत्र वनमें पड़कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीब, रक्त और विष्ठामें डाली गयी। कीड़ोंसे भरे हुए कुण्डमें रहना पड़ा। आरीसे मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्रका भलीभाँति मुझपर प्रहार किया गया। दूसरे-दूसरे नरकोंमें भी मैं गिरायी गयी। अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा। पहले सियारकी योनिमें पड़ी, फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लिया। तत्पश्चात् क्रमशः साँप, मुर्गे, बिल्ली और चूहेकी योनिमें जाना पड़ा। इस प्रकार धर्मराजने पीड़ा देनेवाली प्रायः सभी पापयोनियोंमें मुझे डाला। उन्होंने ही मुझे इस भूतलपर शूकरी बनाया है। 'महाभागे! तुम्हारे हाथमें सब तीर्थ हैं। तुम्हारे प्रसादसे मेरे पाप नष्ट हो गये हैं और तुम्हारे ही पुण्य-तेजसे मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं नारकीय यन्त्रणामें पड़ी हुई हूँ। मेरा उद्धार करो।'

रानीने कहा—'भद्रे! मैंने! क्या पुण्य संचय किया है कि मैं तुम्हारा उद्धार करूँगी।' शूकरी बोली—'ये महाराज इक्ष्वाकु साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं और तुम साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा हो। तुम पतिव्रता, पतिपरायणा, भाग्यशालिनी सती नारी हो, अतः तुम सदा सर्वतीर्थमयी हो। तुम मेरे कल्याणके लिये अपना एक दिनका पुण्य प्रदान करो। मेरे लिये इस समय तुम्हीं माता हो, तुम्हीं पिता हो, तुम्हीं गुरु हो। मैं पापिनी, दुराचारिणी, असत्यवादिनी, दुःखोंसे पिसी हुई ज्ञानहीना नारी हूँ। हे शुभे! तुम दया करके मेरा उद्धार करो।'

यह सुनकर रानीने अपने पति महाराज इक्ष्वाकुकी ओर देखा। महाराजने कहा—'इस दुःखिनीको पापयोनि प्राप्त हुई है। हे शुभे! तुम अपने गुण और आशीर्वादसे इसका उद्धार करो। तुम्हारा मङ्गल होगा।'

पतिकी आज्ञा पाकर रानीने शूकरीसे कहा—'अच्छा! मैं तुम्हें अपना एक वर्षका पुण्य प्रदान करती हूँ।'

रानीके यह कहते ही शूकरीने पुनः सुन्दर मानवी देह प्राप्त की और दिव्य विमानपर सवार होकर वह स्वर्गलोकको चली गयी।

इन्द्रके द्वारा सुकलाके पातिव्रत्यकी परीक्षाका आयोजन

सुकला बोली—मैंने धर्मका ऐसा ही रूप सुना है इसलिये मैं पतिसे विहीन होकर नाना प्रकारके इन भोगोंका उपयोग कैसे कर सकती हूँ? पतिके बिना मैं जीवन धारण नहीं करूँगी।

सतीशिरोमणि सुकलाके मुँहसे ऐसे सुन्दर पातिव्रत्यधर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। ये उसकी प्रशंसा करने लगीं। ब्राह्मण और देवता सभी उस पुण्यवती नारीका पतिके प्रति उसका अनुराग देखकर स्मरण करने लगे। उधर ईर्ष्या और स्वार्थपरतासे इन्द्रका मन भर गया। सुकलाकी असाधारण दृढ़ता देखकर इन्द्रने सोचा—मैं इस स्त्रीका पतिप्रेम और धैर्य भङ्ग करूँगा। उन्होंने कामदेवको बुलाया। कामदेव अपनी पत्नी रतिके साथ आये। इन्द्रने उनसे सुकलाको अपनी ओर आकर्षित करने और पतिप्रेमको शिथिल कर देनेका अनुरोध किया। कामदेवने कहा—'देवेश! मैं आपकी पूरी सहायता करूँगा। मैं ऋषि, मुनि, देव, दानव सबको जीतनेकी शक्ति रखता हूँ। एक अबला नारीको जीतना मेरे लिये कौन-सी बड़ी बात है? मैं कामिनियोंके सर्वाङ्गमें निवास करता हूँ। देव! नारी मेरा गृह है। मैं सदा उसीमें रहता हूँ। वहाँ रहकर मैं समस्त पुरुषोंको नचाता हूँ। नारी स्वभावत: अबला है। वह मेरे बाण, मेरी प्रेरणासे संतप्त होकर सहज ही धर्मसे विचलित हो जाया करती है। उस समय वह उसके बुरे परिणामका विचार नहीं करती। स्त्रियोंमें धैर्य नहीं होता। सुरेश! मैं सुकलाका अवश्य नाश करूँगा।'

इन्द्रने कहा—'मैं रूपवान्, धनवान् पुरुष बनकर कौतुकके लिये उस स्त्रीको विचलित करूँगा। भाई! मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, मोहके कारण ऐसा नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल उसकी परीक्षा लेना चाहता हूँ कि उसका पातिव्रत्यधर्म कैसा है। मैं सुन्दर वेष धारण करके उसे अपनी ओर आकर्षित करूँगा। तुम इस काममें मेरी सहायता करना, उसके मनमें मेरे प्रति मोह उत्पन्न कर देना।'

कामदेवको आदेश देकर इन्द्रने मनमोहन रूप धारण किया। सुन्दर रूप, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषण, मन्द-मन्द मुसकराहट, सुगन्धित पुष्पमालाएँ धारण किये इन्द्र सुकलाके स्थानपर पहुँचे पर उसने उनकी ओर ध्यान भी न दिया।

सुकला जहाँ-जहाँ जाती, इन्द्र उसके पीछे लगे रहते। इतनेपर भी उन्हें कुछ सफलता न हुई। तब इन्द्रने एक स्त्रीको दूती बनाकर उसके पास भेजा। वह स्त्री एक दिन सुकलाके पास पहुँची और हँसती हुई बोली—'अहा, कितना सत्य है! कितना धैर्य है! कितनी कान्ति है! कितनी क्षमा है! तुम्हारी-जैसी गुणवती और रूपवती नारी संसारमें नहीं है। हे कल्याणी! तुम कौन हो? किसकी भार्या हो। जिसकी तुम भार्या हो वह पुरुष इस पृथ्वीपर धन्य और भाग्यशाली है।'

उसकी बात सुनकर सुकला बोली—'धर्मात्मा कृकल वैश्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं सत्यव्रती पतिकी मैं प्रिय भार्या हूँ। मेरे धर्मात्मा स्वामी तीर्थयात्राके लिये गये हुए हैं। उनको यात्रापर गये तीन वर्ष बीत गये हैं। उनके बिना मैं बड़ी दुःखी हूँ। यही मेरा परिचय है। अब तुम बोलो, कौन हो और क्यों मुझसे यह सब पूछ रही हो?'

दूती बोली—'भद्रे! तुम्हारा निर्दय पति तुम्हें छोड़कर चला गया है। उसने तुम्हारे प्रेमका अनादर किया है। तुम उसे लेकर क्या करोगी। वह पापी है, तुम साध्वी पत्नी हो। न मालूम वह कहाँ है, किस अवस्थामें है, मर गया है या जीता है! तुम अब क्यों उसके लिये व्यर्थ दुःख पा रही हो। क्यों सोनेके समान दिव्य कान्तिवाली अपनी देहको मिट्टी कर रही हो। मनुष्य बचपनमें बालक्रीडाके सिवा और कोई सुख नहीं प्राप्त करता। बुढ़ापा दुःख भोगते बीतता है, बस, थोड़े-से जवानीके दिन बच जाते हैं, जिनमें मनुष्य सुख भोगता है। जबतक जवानी है तभीतक मनुष्य मनमाना सुख भोग सकता है! जवानी बीत जानेपर सब सूना हो जायगा। बुढ़ापा आनेपर कोई काम नहीं बनता—आदमीका समय चिन्ताओंमें बीत जाता है, वह कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। भद्रे! जिस प्रकार जलके सूख जानेपर पुल बाँधना बेकार है, उसी प्रकार यौवन बीत जानेपर भोग-विलासका प्रयास करना बेकार है। इसलिये जबतक जवानी नहीं जाती, तबतक सुख-भोग कर लो। भद्रे! मदिराका स्वाद लो। कामके बाण तुम्हारे शरीर जला रहे हैं। वह देखो, वहाँ एक रूप-गुण-शील पुरुष बैठा है। वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानवान्, गुणवान्, रूपवान् है। तुम्हारे प्रति प्रेमसे उसका हृदय भरा है।'

सुकलाने कहा—जीवका बचपन, जवानी और बुढ़ापा नहीं होता। जीव स्वयंसिद्ध, अमर, अकाम और सब लोगोंमें आत्मरूपसे वर्तमान है। जैसे घरका एक आकार है उसी तरह शरीरका भी एक रूप है। बढ़ई जिस तरह सूतसे स्थानको नापकर मन्दिर बनाता है, शरीर-रचनाको भी वैसा ही जानना

चाहिये। अनेक प्रकारकी लकड़ियों, मिट्टी, पत्थर और जलसे घर बनता है। पीछे उसपर पलस्तर किया जाता है, रंग करनेवाले काठ और दीवारोंपर रंग करते हैं। वायुद्वारा प्रतिदिन धूल आदिसे घर मलिन होता रहता है। इसे घरका मध्यकाल कहते हैं। घरका रूप बिगड़नेपर घरका मालिक उसपर लिपाई कर देता है। गृहस्वामीकी इच्छासे गृह फिर रूपसम्पन्न हो जाता है। दूती! इसीको तरुणाई या जवानी कहते हैं। बहुत दिनों बाद गृह जीर्ण हो जाता है। सब काठ स्थानभ्रष्ट होकर जड़से हिलने लगते हैं। उस समय घर लिपाई और मरम्मतका बोझ भी सहन नहीं कर सकता। किसी तरह उसका ढाँचामात्र खड़ा रहता है। दूती! यही घरका बुढापा है। उसके बाद गृहवासी घरको गिरता-गिरता देखकर छोड़ देता है और दूसरे घरमें रहने लगता है। मनुष्यका बचपन, जवानी और बुढ़ापा भी इसी तरह घरके समान है। मनुष्य बचपनमें ज्ञानहीन होता है, फिर वस्त्र-आभूषणोंसे शरीरको सजाता है। चन्दन तथा अन्य सुगन्धित द्रव्योंके लेप और ताम्बूल (पान) इत्यादिके द्वारा शृङ्गारसम्पन्न शरीर रूपवान् बन जाता है। भीतर, बाहर सब रससे पुष्ट होता है। रसके पोषणसे ही मनुष्यका विकास होता है। मांस बढ़ता है और रसके संसर्गसे नवीन रूप धारण करता है। रस-संचयसे सब अङ्ग अपने-अपने रूपको प्राप्त करते हैं। रस और मांस दोनोंके द्वारा देहकी वृद्धि होती है और इन दोनोंके द्वारा ही उसका स्वरूप बनता है। दूतिके! इसी स्वरूपद्वारा मरणशील रसबद्ध होता है। इस प्रकार जो नष्ट हो जाता है, उसे किस तरह सुरूप कहा जाय और उससे क्यों प्रेम किया जाय? यह शरीर मल-मूत्रका आधार है? यह अपवित्र है, सदा ही क्षयको प्राप्त हो रहा है। यह पानीके बुलबुलेके समान है, तब इसके रूपका तुम क्या वर्णन करती हो? पचास वर्षतक ही देह दृढ़ रहती है। उसके बाद वह शिथिल होने लगती है। दाँत कमजोर होने लगते हैं, मुँहसे लार टपकती है, आँखोंकी ज्योति कम हो जाती है, सुनायी कम पड़ता है। शरीर असमर्थ होने लगता है और बुढ़ापा छा जाता है। बार-बार रोगोंका आक्रमण होता है। वह रस सूखने लगता है। शरीरकी कोई शक्ति नहीं रह जाती। उस समय वह रूपकी लालसा नहीं करता। जिस तरह जीर्ण गृह नष्ट हो जाता है, उसी तरह बुढ़ापेमें कलेवर नष्ट हो जाता है। मेरे अंदर रूप आया है, धीरे-धीरे चला जायगा। फिर मेरे रूपवती होनेका क्या अर्थ है? दूतिके! तुम मेरे पास आकर जिस पुरुषके लिये कह रही हो वह पुरुष कौन है? तुमने मेरे अंदर कौन-सा रूप देखा है? बोलो! तुम्हारे उस पुरुषके

अङ्गोंसे मेरे अङ्ग न अधिक हैं, न कम हैं। जैसी तुम, वैसा वह और वैसी ही मैं हूँ। इसमें कोई संदेह नहीं। बोलो तो इस भूतलपर किसके पास रूप नहीं है, कौन रूपवाला नहीं? तुम देखोगी, इस संसारमें सब उन्नतियोंका पतन होता है। दूती! समस्त चराचरमें एकमात्र आत्मा ही वास करता है। वह अरूप है, वही रूपवान् भी है। वह दिव्य है, वह सबमें समाया है, वह शुद्ध और पवित्र है। जिस तरह घड़ोंमें जल रहता है, उसी तरह वह सबमें निवास करता है। जिस तरह घड़ोंके फूट जानेपर सब जल एक हो जाता है, उसी तरह पिण्ड समूहका नाश हो जानेपर आत्मा एकत्वको प्राप्त करता है। तुम इसे नहीं समझती; किंतु मुझे संसारियोंका एक ही रूप दिखायी पड़ता है। इस प्रतिक्षण नाश होनेवाले शरीरमें सुन्दरता कहाँ है? क्या चमड़ीका रंग ही सुन्दरता है? रोगसे शिथिल इसी शरीरमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। जूँ और कीड़े पड़ जाते हैं। कीड़ोंसे फोड़ा और खुजली हो जाती है; जूँके कारण पीड़ा होती है, जो धीरे-धीरे सारे शरीरोंमें फैल जाती है। नाखूनोंके रगड़नेसे खुजली शान्त हो जाती है। सुनो, रतिका कार्य भी वैसा ही है। नाशवान् व्यक्ति सुन्दर भोजन करते हैं, सुस्वादु रसोंका पान करते हैं। उनकी खायी-पीयी चीज प्राणवायुके द्वारा पाकस्थलीमें लायी जाती है। दूतिके! प्राणियोंकी सब खायी-पीयी चीजें पाकस्थलीमें एकत्र होती हैं। वायुसे जल बाहर निकल जाता है। फिर सारभूत रस रक्तके रूपमें बदल जाता है। फिर वह रक्त शुद्ध वीर्य बनकर ब्रह्मरन्ध्रमें प्रयाण करता है। वहाँसे समानवायुद्वारा आकृष्ट होकर और लाया जाकर फिर कहीं स्थिर नहीं रहता। सर्वदा चञ्चल रहता है। प्राणियोंके कपालमें छः कीड़े विद्यमान हैं। दो कानोंकी जड़, नाकके अग्र भाग और नेत्रोंमें इनका स्थान है। इनका आकार छोटी अँगुलीके समान है। इनका रंग नवनीत (मक्खन) के समान है। इनमेंसे कुछकी पूँछ लाल और कुछकी काली है। कानकी जड़में जो कीड़े हैं उनके नाम पिंगली और शृंखली हैं। नाकके अगले भागमें स्थित कीड़ोंके नाम चपल और पिप्पल हैं। आँखोंके मध्य स्थित कीड़ोंके नाम शृंगली और जंगली हैं। प्राणिदेहमें इस प्रकार १५० कीड़े विद्यमान हैं। ललाटके अंदर कुछ कीड़े हैं, जो सरसोंके दानोंके समान हैं। ये देहधारियोंमें कपालरोग पैदा करते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे संतानोत्पत्तिवाले महाकीटाणु भी हैं। उनकी बात भी तुमसे कहती हूँ। उन कीड़ोंका आकार चावलके समान है, रंग भी चावलके समान है। उन कीड़ोंके मुखमें यदि दो रोएँ हों तो वैसे कीड़ेवाले मनुष्य तुरंत नष्ट हो जाते हैं। अपने उपयुक्त स्थानमें स्थित प्राजापत्य

(प्रजा अथवा संतान उत्पन्न करनेवाले) कीड़ोंके मुँहमें रसरूपमें वीर्यपात होता है। प्राजापत्य मुँहद्वारा उस वीर्यका पान करके उन्मत्त हो उठता है। तालुके भीतर वह वीर्य चंचल हो जाता है। इडा, पिंगला और सुषुम्णा नामक तीन नाड़ियाँ हैं। उस नाड़ी-जालके पंजरमें वीर्यके कारण सब प्राणियोंमें कामकी खुजली उत्पन्न होती है। उससे पुरुष और स्त्रीको उत्तेजना होती है। उस समय स्त्री-पुरुष प्रमत्त होकर सङ्ग करते हैं। उससे क्षणमात्रके लिये सुख होता है। फिर कुछ समयके बाद वही खुजली उत्पन्न हो जाती है। दूती! सर्वत्र वही बात देखी जाती है। इसलिये तुम अपने घर लौट जाओ, तुम्हारे प्रस्तावमें कुछ भी अपूर्व बात नहीं, जिसके करनेका लोभ मुझे हो।

सुकलाके पाससे सर्वथा निराश होकर दूती इन्द्रके पास लौट गयी और संक्षेपमें उसने सब बातें सुना दीं। इन्द्रने सुकलाकी बातें सुनकर विचार किया कि पृथ्वीपर ऐसी योगयुक्त, सुसम्बद्ध और ज्ञानवर्द्धक बातें क्या कोई स्त्री कह सकती है? अवश्य यह महाभागा परम पवित्र और सत्यरूपा है। फिर इन्द्रने कन्दर्प (कामदेव) से कहा कि 'मैं तुम्हारे साथ कृकलकी पत्नी सुकलाको देखने चलूँगा।'

अभिमानसे उन्मत्त होकर कामदेवने कहा—'देवेश! आप उस स्त्रीके पास चलिये। मैं उसका मान, धैर्य और व्रत भंग करूँगा। मेरे सामने वह स्त्री बेचारी क्या है।'

इन्द्रने कहा—'अनङ्ग! तुम व्यर्थ बहुत बकते हो। तुम उस स्त्रीको नहीं जानते । वह सत्यबलसे सुदृढ़ है, धर्ममें स्थिर है, इसलिये अजेय है। वहाँ तुम्हारा किया कुछ न होगा।'

कामदेवने चिढ़कर क्रोधमें कहा—'मैंने देवों और ऋषियोंका बल नष्ट किया है। इस नारीका बल कितना है? आप मुझसे क्या कह रहे हैं। आपके सामने ही मैं उस नारीका नाश करूँगा। आगका तेज देखते ही जिस तरह मक्खन गल जाता है, उसी तरह अपने तेज और रूपसे मैं उसे द्रवीभूत करूँगा। आप मेरे विश्वविमोहन तेजकी निन्दा क्यों करते हैं। शीघ्र चलिये और मेरा पराक्रम देखिये।'

इन्द्र बोले—'मैं तुम्हारी निन्दा नहीं करता। तुम्हारी शक्ति भी जानता हूँ, फिर भी मुझे यह नारी तुम्हारे लिये अजेया मालूम पड़ती है। यह पुण्यकर्मा, पुण्यदेहा और धैर्यवती होनेके कारण डिगनेवाली नहीं है। जो हो, मैं तुम्हारे साथ चलकर तुम्हारा पौरुष-बल देखूँगा।'

इन्द्र और कामदेवपर सुकलाकी विजय

इसके बाद इन्द्र रति, काम और दूतीके साथ उस पतिव्रताके पास गये। सती सुकला अकेली घरके भीतर बैठी थी और पतिके चरणोंके ध्यानमें लगी थी। जिस तरह योगी अन्य सब कल्पनाओंको छोड़कर केवल ध्येयमें ही चित्तको स्थिर कर लेते हैं, वैसे ही सुकला भी सब विषयोंसे ध्यान हटाकर पतिके चरणोंमें ध्यानस्थ थी। इन्द्र और कामदेव दोनों अपूर्व रूप और प्रभावसे सतीको अस्थिर और मोहित करनेकी चेष्टा करने लगे पर सुकला तनिक भी विचलित न हुई। उसका ध्यान इनके रूपपर गया ही नहीं। वह पतिव्रता और सत्यनिष्ठा नारी बड़ी ऊँची मनोदशामें थी। सुकलाने इन लोगोंको देखा। फिर इन्द्रको देखकर सोचा—इसी व्यक्तिने पहले मेरे पास एक दूतीको भेजा था। यह दुष्टस्वभाव व्यक्ति मेरा कुसमय जानकर मेरे प्रति वासनामय हो रहा है। किंतु सतीके आत्मभारसे मर्दित होकर रतिसमेत मन्मथ किस तरह जीवन धारण करेगा। यह देह इस समय शून्य, चेष्टाहीन और मृतप्राय हो गयी है। मेरा काम-विकार नष्ट हो गया है। आँखोंके सामने नाचता हुआ हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति मर जानेपर जैसा मालूम पड़ता है, मुझे भोगनेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति भी मुझको ठीक वैसा ही दिखायी देता है।

सती सुकला इस प्रकार विचारकर अपने चित्तको सत्यरूपी रस्सीसे बाँधकर घरके भीतर चली गयी।

देवराज इन्द्र सुकलाका मनोभाव समझकर कामदेवसे बोले—'सती सुकलाको जीतनेकी शक्ति तुममें नहीं। यह सती अपनी शक्तिमें विश्वास रखनेवाले वीरकी भाँति धर्मरूप धनुष और ज्ञानरूप उत्तम बाण धारण करके इस समय युद्धमें अवतीर्ण हुई है। यह सती युद्धमें तुम्हें जीतनेमें समर्थ है। तुम अपने भविष्यकी चिन्ता करो। पहले तुम महात्मा शम्भुद्वारा जलाये गये थे। महात्माके साथ विरोध करनेके कारण तुम अनङ्ग हुए। पहले जो बुरा कर्म तुमने किया था, उसका कड़ुआ फल पा रहे हो। अब

इस साध्वीके साथ विरोध करनेपर निश्चय ही तुम कुत्सित योनि प्राप्त करोगे। जो लोग जान-बूझकर महात्माओंके साथ वैर करते हैं, वे निश्चय ही हानि उठाते और दुःख भोगते हैं। इसीलिये आओ, हमलोग इस सतीको छोड़कर लौट चलें। देखो, मैंने पहले सतीके साथ दुष्कर्म करके बड़ा कष्ट पाया था। गौतमने मुझे शाप दिया था, जिससे मेरे सारे अङ्गोंमें छिद्र हो गये थे और मेरी बड़ी दुर्दशा हुई थी। उस समय तुम मुझे छोड़कर भाग गये थे। सतियोंके तेजका प्रभाव अतुलनीय है—सूर्यभगवान् भी उसे सहनेमें असमर्थ हैं। पुराने जमानेमें सती शाण्डिलीने मुनिके शापसे पीड़ित अपने कुरूप और कोढ़ी स्वामीकी रक्षा की थी। उन्होंने उदीयमान सूर्यको रोककर अपने पति कौण्डिन्यके प्रति माण्डव्यके शाप और अपने पतिकी मृत्युका निवारण किया था। अत्रिपत्नी पतिव्रता अनसूयाने अपने प्रभावसे क्या नहीं किया। सतियाँ सर्वदा सत्कारके योग्य हैं। सावित्री अपने मृत पति सत्यवान्‌को यमके पाशसे पुनः लौटा लायी थी। मैंने सतियोंका बड़ा माहात्म्य सुना है। कौन मूर्ख अग्निशिखाको स्पर्श करता है, कौन मूर्ख गलेमें पत्थर बाँधकर तैरता हुआ समुद्र पार करनेका प्रयास करता है। कौन मूढ़ वीतरागा सतीको वशमें कर सकता है।'

इन्द्रने इस प्रकार बहुत-सी नीतियुक्त बातें कहकर कामदेवको शिक्षा दी, पर कामदेवपर उसका कुछ असर नहीं हुआ। उसने कहा—'मैं आपके ही आदेशसे यहाँ आया हूँ। अब आप बड़े भक्त बन रहे हैं; किंतु सुरेश! यदि मैं पीछे लौट जाऊँ तो संसारमें मेरी कीर्ति नष्ट हो जायगी; मेरा मान नष्ट हो जायगा। सब लोग कहेंगे—एक स्त्रीने इसे जीत लिया है। पहले जिन देवताओं, दानवों और तपोनिष्ठ मुनीन्द्रोंको मैंने जीत लिया है, वे मेरा उपहास करेंगे, कहेंगे—यह बड़ी शेखी मारता था पर एक साधारण स्त्रीसे डरकर भाग गया। इसलिये सुरेश! आप घबराइये नहीं। चलिये, मैं उस स्त्रीका तेज, बल और धैर्य सब नष्ट करूँगा।'

इसके बाद कामदेवने हाथमें पुष्पबाण और धनुष लेकर रतिसे कहा—'प्रिये! तुम मायाका अवलम्बन करके यात्रा करो। वह जो धर्मनिष्ठ, गुणवती सुकला है, उसके पास जाकर मेरी सहायता करो।'

फिर कामदेवने प्रीतिको बुलाकर कहा—'तुम मेरा काम बनाओ, सुकलाको स्नेहसे परिपूर्ण कर दो। तुम ऐसा कार्य करो कि इन्द्रको

देखकर सुकला प्रसन्न हो और उनपर अनुरक्त हो जाय। उसे इन्द्रके वशीभूत कर दो।'

इसके पश्चात् कामदेवने मकरन्दको बुलाया और कहा—'जाओ सखे! जाकर नन्दनके समान एक मायामय फूल-फल-सम्पन्न वन निर्मित करो। उस वनमें कोकिलाएँ कूजती हों, मधुकर मधुर रव करते हों।'

फिर कामदेवने स्वादगुणयुक्त रसायनको भी अनिल इत्यादि चतुर सहचरोंके साथ भेज दिया। इस प्रकार कामदेवने त्रिलोकको मोहित करनेवाले वीर सैनिकोंको भेजकर स्वयं इन्द्रके साथ उस महासतीको नष्ट करनेके लिये प्रस्थान किया!

इस प्रकार सुकलाके सत्यानाशके लिये इन्द्रके साथ कामदेवके प्रस्थान करनेपर सत्यने धर्मसे कहा—'महाप्राज्ञ धर्म! कामदेवका कार्य देखो। मैंने तुम्हारे, अपने तथा महात्मा पुण्यके लिये सती सुप्रिया और सुदेवा नामक उत्तम गृहकी सृष्टि की है। प्रमत्तबुद्धि काम जाकर उसका नाश करेगा। यह दुष्टात्मा काम हमलोगोंका शत्रु है, इसमें संदेह नहीं। धर्म! तपोधन विप्र, सुमति पतिव्रता और नीतिमान् राजा—ये तीन मेरे घर हैं। जहाँ मेरी वृद्धि और पुष्टि होती है, वहाँ तुम्हारा भी वास होता है। श्रद्धासहित पुण्य भी वहाँ जाकर क्रीड़ा करते हैं। शान्तिके साथ क्षमा भी मेरे घर निवास करती है। जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ दान, दया, प्रज्ञा, लोभहीनता, सौहार्द आदि वर्तमान रहते हैं। वहीं पवित्र स्वभाव रहता है। ये सब मेरे बहिन-भाई हैं। धर्मराज! सुनो। अस्तेय, अहिंसा, तितिक्षा और अभ्युदय मेरे घरपर ही धन्य होते हैं। गुरुसेवा, लक्ष्मीसहित विष्णु, अग्नि आदि देवता और मोक्षके मार्गको प्रकाशित करनेवाला उज्ज्वल ज्ञान—मेरे घर आते हैं। सतियाँ और धर्मपरायण साधुजन मेरे गृहस्वरूप हैं; उपर्युक्त कुटुम्बियों और तुम्हारे साथ मैं इन घरोंमें वास करता हूँ। पार्वतीयुक्त शिव भी मेरे निवासस्थान हैं। मेरा वह शंकर नामक घर भी एक बार कामदेवके द्वारा नष्ट किया गया था। महात्मा विश्वामित्र कठोर तप करते थे, उनको भी मेनकाकी सहायता लेकर काम पहले जीत चुका है। गौतम मुनिकी पत्नी अहल्या सती और पतिव्रता थीं, दुरात्मा कामने उन्हें भी सत्यसे विचलित किया था। जगत्में कितने ही महात्मालोग और पतिव्रता नारियाँ कामके कारण अपने मार्गसे भ्रष्ट हुई हैं। दुष्ट काम मेरे

पीछे पड़ा है। अब मैं कहाँ रहूँगा? वह मुझे यहाँ जानकर ही धनुष-बाण लेकर आया है। वह पापात्मा अपने बाणानलसे मेरा घर नष्ट करेगा। क्रूर, पाखण्डी और दूसरोंका अहित करनेवाले तथा असत्य इत्यादि सेनापति सब कामके सहायक हैं। पापी काम अपने दुरात्मा सेनापतियोंकी सहायतासे मेरा घर गिरा रहा है। वह मुझे भी भगा देगा। उसके तेजसे दग्ध होकर मैं नष्ट हो जाऊँगा। मैं स्त्रीजातिके पातिव्रतरूपी नये घरमें रहना चाहता था। पुण्यात्मा कृकलकी प्रिय पत्नी सुकला ही मेरा यह घर है। पापिष्ठ मेरा यह घर भी नष्ट करनेपर उतारू है। बलवान् इन्द्र इस कार्यमें उसकी सहायता कर रहे हैं। वे कामदेवद्वारा किये पुराने कार्योंको भूल रहे हैं—इसके फेरमें पड़कर वे पहले कैसे कष्ट उठा चुके हैं। सतीके साथ व्यभिचार करनेका परिणाम क्या होता है इसे अहल्या-प्रकरणमें वे देख चुके हैं, फिर भी आज पुण्यचारिणी सुकलाका नाश करनेको उद्यत हुए हैं। धर्मराज! ऐसा करो कि यह कामदेव इन्द्रके साथ न आये।

धर्मराजने कहा—'मैं कामका तेज नष्ट करनेका, यहाँतक कि उसकी मृत्युका भी प्रबन्ध करूँगा। मैंने जो उपाय सोचा है, उसे सुन लो। प्रज्ञा शकुनका रूप धारणकर आकाशमार्गसे जाकर सुकलाको पतिके शुभागमनका संवाद सुनाये? पतिके आगमनकी बात जानकर स्वस्थचित्तवाली सुकला अवश्य दुष्टोंकी चेष्टासे नष्ट न होगी।' यह कहकर उन्होंने प्रज्ञाको भेजा। प्रज्ञा सुकलाके घरके ऊपर भविष्य जाननेवालेकी तरह महाशब्द करती हुई दिखायी पड़ी। तत्काल सुकलाने धूपदान आदिके द्वारा उसकी पूजा और सम्मान किया। फिर सुकलाने योग्य ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'यह शकुन (पक्षी) क्या कहता है? ब्राह्मणने कहा—'शुभे! यह तुम्हारे पतिके शुभागमनका संवाद सुना रहा है। तुम स्थिर हो, सात दिनके भीतर तुम्हारे पति आयेंगे।' इस मङ्गलमय वाक्यको सुनकर सुकला बड़ी प्रसन्न हुई।

अब उधर कामदेव और इन्द्रने जो किया, वह सुनिये। मायानिर्मित नन्दनवनके प्रस्तुत हो जानेके पश्चात् कामने क्रीड़ाको मूर्तिमती करके और परम सुन्दरी बनाकर सुकलाके घर भेजा। सुकला इस षड्यन्त्रको क्या जानती थी। उसने क्रीड़ाका स्वागत, आदर-सम्मान किया। क्रीड़ाने सुकलाकी विश्वासपात्री बननेके उद्देश्यसे कहा—'देवि! मेरे पति गुणवान्,

बलवान्, विद्वान्, चतुर, अत्यन्त पुण्यात्मा और पुण्यकीर्ति हैं,) पर मैं मन्दभागनी हूँ; वे मुझे छोड़कर चले गये हैं।' सुकलाने उसकी बातोंपर विश्वास करके उसे अपने समान ही दुःखिता तथा सती समझा और सहानुभूतिसे उसका हृदय भर गया। सुकलाने पूछा—'सुन्दरि! तुम्हारे नाथ तुम्हें छोड़कर किसलिये चले गये? तुम सब बातें मुझे बताओ। तुम मेरे समान ही दुःखी हो, तुम मेरी सखी हो।'

क्रीड़ाने कहा—'सुनो बहिन! मैं अपने पतिके चरित्रका वर्णन ठीक-ठीक करती हूँ। जिनकी मैं प्रिया हूँ, उनका मैं सदा अनुगमन करती थी। वे जो इच्छा करते, उसकी पूर्ति करके मैं उन्हें संतुष्ट करती थी। उनकी आज्ञाका पालन करनेमें सदा तत्पर रहती थी, किंतु इस समय मेरा ऐसा दुर्भाग्य उपस्थित हुआ है कि पति मुझ मन्दभागिनीको छोड़कर चले गये हैं। सखी! अब मैं जीवन धारण न करूँगी। पतिविहीना स्त्रियाँ किस प्रकार जीवन धारण कर सकती हैं। पति ही नारीके रूप, शृङ्गार, सौभाग्य, सुख और सम्पत्ति हैं; यही शास्त्रोंका कथन है।' क्रीड़ाकी इन बातोंसे सुकलाको उसपर पूर्ण विश्वास हो गया। उसने उसकी सब बातोंको सच समझ लिया। तब सुकलाने हृदय खोलकर अपनी सारी बातें संक्षेपमें उसे बतायीं। क्रीड़ाने आश्वासन देते हुए कहा—'मनस्विनी! सत्यसे परिपूर्ण आत्मदुःख भी तपस्या ही है। तुम तो तपस्विनी हो, तपस्या कर रही हो।'

इस तरह दोनोंको एक साथ घुल-मिलकर रहते जब कई दिन बीत गये और क्रीड़ाने समझ लिया कि सुकला उसपर पूर्ण विश्वास करती है, तब एक दिन उसने सुकलासे कहा—'सखि! यहाँ निकट ही एक सुन्दर और मनोरम वन है। उसमें नाना प्रकारकी लताएँ और वृक्ष हैं। सुन्दर, सुगन्धित फूलोंकी बहार देखने लायक है। वहाँ परम पवित्र पापनाशन तीर्थ है। चलो, हमलोग भी उस वनमें पुण्य-संचय करने चलें।'

सुकला राजी हो गयी। दोनोंने उस दिव्य वनमें जाकर देखा—चारों ओर फूल खिले हैं, कोकिल बोल रहे हैं, भौंरे गूँज रहे हैं, मीठी बोलीवाले पक्षी नाचते और फुदकते हैं—सर्वत्र अनुपम सौन्दर्य है। यह वही मायानिर्मित वन था, जो सुकलाको मोहित करनेके लिये रचा गया था। जब सुकला क्रीड़ाके साथ वहाँ घूम रही थी, तभी इन्द्र उस दूतीके साथ दिव्य रूप धारण कर वहाँ उपस्थित हुए। काम भी आ गया। इन्द्रने वासना-

विह्वल होकर कामदेवसे कहा—'यह देखो, सुकला आ रही है। तुम उसपर अपना बाण चलाओ।' क्रीड़ा माया रचकर बड़े कौशलसे इसे यहाँ लायी है। अब तुम्हारी परीक्षाका अवसर आया है। तुममें पौरुष हो तो उसे दिखाओ।' कामदेवने कहा—'आप लीला करते हुए अपना मनोहर रूप इसे दिखाइये, तब उसकी सहायतासे मैं इसपर प्रहार करूँगा।' इन्द्रने कहा—'मूढ़! जिसके द्वारा तुम लोगोंको पराजित करते हो, तुम्हारा वह पौरुष आज कहाँ है? तुम मेरा अवलम्ब लेकर इस समय युद्ध करना चाहते हो?' काम बोला—'देवाधिदेव महादेवने पहले ही मेरा रूप हरण कर लिया है। मेरा कोई रूप नहीं है। जब मैं किसी स्त्रीको घायल करना चाहता हूँ, तब पुरुष-देहका आश्रय लेकर अपनेको प्रकट करता हूँ और जब पुरुषको आहत करनेकी इच्छा होती है, तब नारी-देहका आश्रय लेता हूँ। पुरुष जिस रूपवती नारीको देखता है, उसीकी चिन्ता करता है। जब पुरुष बार-बार नारी-रूपका चिन्तन करता है, तब मैं अदृश्यभावसे उसे पागल बना लेता हूँ। इन्द्र! स्मरणरूप होनेके कारण ही मेरा नाम 'स्मर' पड़ गया है। मैं नारीरूपका आश्रय लेकर धीर पुरुषको मोहित करता हूँ और पुरुषका आश्रय लेकर सती नारीको भी विचलित करता हूँ। इन्द्र! मैं रूपहीन हूँ, इसीसे रूपका आश्रय लिया करता हूँ। इस समय आपके रूपका आश्रय लेकर मैं उस नारीको आपकी अनुरागिणी बनाऊँगा।'

इतनी बात कहकर कामदेवने इन्द्रके रूपका आश्रय लिया। और साध्वी सुकलाको आहत करनेके लिये उसकी देहको अपने बाणका लक्ष्य बनाकर बैठ गया।

उधर छलमयी क्रीड़ाके साथ सुन्दरी सती सुकलाने उस रम्य वनमें प्रवेश करके सब जगह घूम-घूमकर देखा। फिर अपनी सङ्गिनी सखीसे पूछा—'सखि! यह सुन्दर फल-फूलोंसे लदा वन किसका है? यह समस्त सुख-भोगोंसे सम्पन्न है।'

क्रीड़ाने उत्तर दिया—'यह जो दिव्य वन देख रही हो, यह मकरध्वजका वन है।'

सुकलाने दुरात्मा कामकी चेष्टा देखकर पुष्पोंका गन्ध नहीं लिया। कामका यह बाण निष्फल गया। उस सतीने सुरसोंका भी आस्वादन नहीं किया। कामका सखा सुरस भी उससे हार गया। वह लज्जित होकर बूँद-

बूँदकर पृथ्वीपर चू गया। सुकलाद्वारा हराये जानेपर रस पके हुए फलों और पुष्प-मंजरियोंसे थोड़ा-थोड़ा करके पृथ्वीपर गिरने लगा।

उस समय प्रीतिके साथ कामपत्नी रतिने सुकलाके समीप जाकर मुसकराते हुए कहा—'भद्रे! तुम्हारा शुभागमन हो, मङ्गल हो; तुम प्रेमपूर्वक नयनाभिराम इन्द्रके साथ रमण करो। यदि तुम्हारी राय हो तो मैं उन्हें बुला लाऊँ।'

रति और प्रीतिको देखकर और उनकी बातें सुनकर सुकलाने कहा—मेरे धर्मात्मा पति मेरी रति लेकर विदेश चले गये हैं, मेरे पति जहाँपर हैं, मैं वहीं पतिके साथ वर्तमान हूँ। मेरा काम और प्रीति दोनों पतिके निकट हैं। यह जो तुम देख रही हो, मेरी छायामात्र है। मेरा यह कलेवर निराश्रय है।'

सुकलाकी बातोंसे रति और प्रीति दोनों लज्जित हुईं। वे लज्जित हो कामके पास गयीं और उन्होंने इन्द्रकी देहमें आश्रय लिये और धनुष खींचे हुए कामदेवसे कहा—'यह नारी हरायी नहीं जा सकती। यह सर्वदा पतिव्रता और पतिकामा है। आप अपना दुराग्रह छोड़िये।'

कामने कहा—'देवियो! घबराओ नहीं। सुकला जिस समय इन्द्रका रूप देखेगी, उस समय मैं उसे आहत करूँगा।'

तब सुरपति इन्द्र सुन्दर रूप और वेष धारण कर रतिके पीछे-पीछे चले और उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ वह पतिव्रता सुकला थी। उन्होंने सुकलासे कहा—'भद्रे! मैंने प्रीतिके साथ तुम्हारे पास एक दूती भेजी थी, तुम मुझे क्यों अस्वीकार करती हो? सुकलाने उनकी ओर बिना देखे ही कहा—'तुम्हारा मङ्गल हो; मैं यहाँ अकेली नहीं हूँ; मैं अपने महात्मा पुत्रोंसे सुरक्षित हूँ। वे शूरगण सर्वत्र मेरी रक्षा करते हैं। मैं केवल अपने पतिका काम करनेके लिये ही सर्वदा व्यग्र रहती हूँ। तुमको मेरे सामने यह कुत्सित प्रस्ताव करते तनिक भी लज्जा नहीं आती? तुम कौन हो, जो मृत्युसे भी निर्भय होकर यहाँ आये हो?'

इन्द्रने कहा—'मैं तो केवल तुम्हींको इस वनमें देखता हूँ, किंतु तुम और लागोंकी तथा वीर पुत्रोंकी बातें करती हो। मैं उन्हें कैसे देख सकता हूँ? तुम मुझे दिखाओ।'

सुकलाने कहा—'जिन्होंने धृति, मति, गति और बुद्धि आदिके सहित

सत्यको अपने आत्मीयजनोंके अधिपतिरूपसे प्रतिष्ठित किया है, जिनके सब धर्म अविचल हैं, जो स्थिरचित्त, आत्मनिष्ठ और महात्मा हैं, उन्हीं शम-दमादिसे युक्त मेरे धर्मात्मा पतिने सर्वदा मेरी रक्षा की है। धर्म इन्द्रियदमन और पवित्रताके रूपमें मेरी रक्षा कर रहा है। वह देखो, शान्ति और क्षमाके साथ सत्य सर्वदा मेरे समीप उपस्थित है। महाबल बोध मेरा कभी त्याग नहीं करते। अपने गुणोंसे उत्पन्न दृढ़ बन्धनसे मैं सर्वदा बँधी हूँ। सत्य इत्यादि समस्त धर्मोंकी रक्षा मैंने की है, अतः वे सदा मेरी रक्षा करते हैं। धर्म, शम, दम, बुद्धि, पराक्रम—सब मेरी रक्षा करते हैं। तुम क्या मेरे साथ बलात्कार करना चाहते हो? तुम कौन हो जो यों निर्भय होकर दूतीके साथ आये हो। मेरे पतिके सत्य, धर्म, पुण्य और ज्ञान आदि प्रबल सहायक ही घरमें मेरी रक्षा करते हैं। इन्द्र भी मुझे जीतनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि साक्षात् कामदेव भी आ जायँ तो सदा सत्यधर्मसे सुसज्जित मेरे शरीरपर उनके बाण व्यर्थ हो जायँगे। देखो, धर्मादि महाभट अभी तुम्हारा विनाश करेंगे। बचना चाहते हो तो तुरंत दूर हटो , भाग जाओ, मेरे समाने यहाँ मत खड़े रहो। यदि मेरे मना करनेपर भी तुम यहाँ रहोगे तो जलकर राख हो जाओगे। तुम परपुरुष होकर मेरा रूप निरीक्षण करते हो? जिस तरह आग काठको जला देती है, उसी तरह मैं तुम्हें भस्म कर डालूँगी।'*

सुकलाकी ये बातें सुनकर इन्द्रने मन्मथ कामदेवसे कहा—'इस नारीका पौरुष देखो। तुम बढ़-बढ़कर बातें करते थे। अब इसके साथ अपने पौरुषसे युद्ध करो।'

पर कामकी भी हिम्मत न पड़ी। इन्द्र, काम आदि सब शापके भयसे अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। उन सबके चले जानेपर पतिव्रता पुण्यशीला सुकला पतिका ध्यान करती हुई अपने घर चली आयी।

---

* दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ समाग्रतः।
वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा विना निरीक्षेत मम रूपं यदा भवान्।
यथा दारु दहेद् वह्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा॥

(पद्म० भूमि० ५८। ३५-३६)

कृकलका घर लौटना और सुकलाके पातिव्रत्यकी महिमा

इस प्रकार इधर सुकलाने अपनी धर्मनिष्ठासे इन्द्र और कामपर विजय प्राप्त की, उधर उसके पति कृकलने तीर्थाटनका सम्पूर्ण कार्यक्रम सकुशल समाप्त करके, अपने मित्रोंके साथ, घरके लिये प्रस्थान किया। वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि 'मैंने, अपने तीर्थाटन इत्यादि पुण्यकार्योंसे अपना जन्म सफल किया और पितरोंको भी संतोष दिया।' वे यों अपनी कल्पनामें डूबे हुए थे कि इसी बीच उन्होंने देखा, एक दिव्य रूपधारी विशाल पुरुष प्रकट होकर उनके पितामहोंको बाँधे हुए कह रहे हैं—'कृकल! तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं। तुम्हें तीर्थफल नहीं मिला है। तुमने व्यर्थ इतना श्रम किया।'

वैश्य कृकल यह दृश्य देखकर और ये बातें सुनकर चकराये। उनको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पूछा—'आप क्यों ऐसा कह रहे हैं? आप कौन हैं और क्यों, किस दोषके कारण आपने मेरे पितामहोंको बाँध रखा है? मुझे तीर्थफल क्यों प्राप्त न होगा और क्यों मेरी यात्रा निष्फल हुई? कृपापूर्वक विस्तारसे समझाकर सब बातें मुझसे कहिये।'

धर्मने कहा—कृकल! सुनना चाहते हो तो सुनो! जो व्यक्ति पवित्र पत्नीको छोड़कर चला जाता है, उसके सब पुण्यफल व्यर्थ हो जाते हैं। जो पत्नी धर्माचार-परायणा, पुण्यशीला और पतिव्रता है, उसे छोड़कर जो व्यक्ति धर्मकार्य करनेके लिये चला जाता है, उसका किया हुआ सब धर्म व्यर्थ हो जाता है—इसमें संदेह नहीं। जो नारी सदाचारिणी है, धर्ममें तत्पर है, सर्वदा पतिकी सेवा करनेवाली है, ऐसी गुणवती सती भार्या जिस पुरुषकी पत्नी है, उसके घरमें सदा तेजस्वी देवगण निवास करते हैं, पितृगण घरके बीच रहकर उसके कल्याणकी कामना करते हैं। गङ्गादि पवित्र नदियाँ उसीके घरमें हैं। जिसके घर सत्यनिष्ठा, पुण्यशीला सती विराजमान हो, वहाँपर यज्ञ, गौ और ऋषिगण सदा विराजते हैं। वहाँ सब तीर्थोंका वास होता है। पत्नीके संसर्गमें ही इन सब पुण्योंकी प्रतिष्ठा होती है। पतिव्रता भार्याके सहयोगसे ही गृहस्थ-धर्म सिद्ध होता है और पृथ्वीपर

गार्हस्थ्य-धर्मसे बढ़कर कोई धर्म नहीं। गृहस्थका घर पुण्य और सत्यमय है; वह सर्वतीर्थमय और सब देवताओंसे परिपूर्ण है। गार्हस्थ्यका आश्रय लेकर ही समस्त जीव जीवन धारण करते हैं। इसके समान दूसरा कोई आश्रय नहीं। जिस पुरुषके घरमें मन्त्र, अग्निहोत्र, देवता, सनातन-धर्म और तरह-तरहके दान आदि सदाचार रहते हैं, वही पुण्यात्मा है। जो मनुष्य भार्याविहीन है, उसका घर जंगलके समान है। उसके यज्ञादि सिद्ध नहीं होते। धर्म-साधनके लिये भार्याके समान तीर्थ नहीं है। तुम सुनो, तीनों जगत्‌में गृहस्थका दूसरा धर्म नहीं। जहाँपर भार्या हो, वहीं पुरुषका घर है। गाँवमें हो या जंगलमें, जहाँ भार्या रहती है, वहींपर उसके सब धर्म साधित होते हैं। भार्याके समान कोई तीर्थ नहीं , भार्याके समान सुख नहीं, भार्याके समान पुण्य नहीं। तुम सदाचारिणी, सती भार्याको छोड़कर चले गये। गृहधर्मको छोड़कर कहाँपर तुम्हारे लिये धर्मफल है? तुमने जो भार्याके बिना तीर्थोंमें श्राद्ध-दानादि किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पितरोंको मैंने बाँधा है। तुम चोर हो और तुम्हारे ये श्राद्धभोजी लोभी पितामहगण भी चोर हैं। तुमने पत्नीके बिना जो श्राद्धान्न दिया है, वह व्यर्थ हो गया! पत्नी ही गार्हस्थ्यधर्मकी स्वामिनी है, किंतु तुमने अपनी पत्नीको छोड़ दिया है। तुम मूर्ख हो, तुम्हारे सब कर्म चोरीके समान हैं। तुम्हारे ये पितामह भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने तुम्हारी भार्याके अतिरिक्त दूसरेका तैयार किया हुआ अन्न भोजन किया है। भार्या अपने हाथोंसे जो अन्न पकाती है, वह अमृतके समान है, पितृगण प्रसन्न होकर वही अन्न भोजन किया करते हैं, उसी अन्नसे वे तृप्त होते हैं। पत्नीके बिना पुरुषकी धर्मसिद्धि नहीं होती। पत्नी पुरुषको सुगति देनेवाला तीर्थ है। पत्नीके बिना जो धर्म-कर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।'

कृकलने प्रणाम करके पूछा—'धर्मराज! आप कृपापूर्वक मुझे बताइये कि अब किस प्रकार मेरा कार्य सफल होगा और मेरे पितृगण कैसे मुक्त होंगे?'

धर्मने कहा—'तुम घर जाओ। तुम्हारे बिना तुम्हारी गृहिणी दुःख उठा रही है। घर जाकर उसके हाथसे श्राद्ध करो—सब तीर्थोंका स्मरण करके उत्तम देवताओंकी पूजा करो। उसीसे तुम्हारी तीर्थयात्रा सिद्ध होगी।

संसारमें भार्याके बिना जो पुरुष धर्माचरण करनेकी इच्छा करता है, वह गार्हस्थ्यका नाश करके अकेले ही वनमें विचरण करता है, संसारमें वह कृतार्थ नहीं होता। गृहिणीके घरमें रहनेपर ही यज्ञकी सिद्धि होती है। मनुष्य अकेला धर्म करनेमें समर्थ नहीं होता।'

कृकल वैश्यसे यह कहकर धर्मराज यथास्थान चले गये। कृकल अपने घर पहुँचे और अपनी पतिव्रता पत्नीको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। सुकलाने पतिको घर आया देखकर मङ्गलाचरण किया। उपयुक्त समयपर कृकलने अपनी यात्रा और अपने कार्योंका वर्णन सुकलासे किया। सुकला सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद कृकलने मन्दिरमें बैठकर अपनी पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म किया। उस समय पितर, देव और गन्धर्व—सबने दोनोंका जय-जयकार किया। इन्द्रने सुकलाका सम्पूर्ण चरित सुनाया और कहा कि 'यह सती महाभागा सुकला परम मङ्गलमयी है; इसके सत्यबलसे संतुष्ट होकर हम सब लोग तुम्हें वर देने आये हैं।'

कृकल अपनी पत्नीकी पुण्यगाथा सुनकर आनन्दसे भर गये। पति-पत्नी दोनोंकी आँखोंमें प्रसन्नतासे जल भर आया। धर्मात्मा कृकलने पतिव्रता पत्नीके साथ समस्त देवताओंको प्रणामकर कहा—'महाभाग देवगण! यदि आप सब लोग हमपर प्रसन्न हैं, तीनों सनातन देवता—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर संतुष्ट हैं तो कृपापूर्वक आशीर्वाद दीजिये कि आपलोगोंकी कृपासे धर्म, सत्य और देवोंके प्रति हमारी निष्ठा अचल रहे, हम सदा भगवान्‌की भक्ति करते रहें और अन्तमें मैं भार्या तथा पितामहोंके साथ विष्णुलोकको प्राप्त करूँ।'

देवताओंने एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।'

फिर देवगण सतीकी स्तुति करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। यह सतीका पुण्य चरित है। जो इसे श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा-सुनेगा, उसका सदैव कल्याण होगा।